khusro foundation

तिरंगा आँचल

तॉहा नसीम

तिरंगा आँचल

तॉहा नसीम

अनुवादः
परवेज़ अहमद

KHUSRO FOUNDATION
www.khusrofoundation.org

© सार्वाधिकार ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन सुरक्षित हैं

Tiranga Aanchal

Taha Nasim

ISBN: 978-81-989382-3-7

Rs. 150.00

नाम किताब	:	तिरंगा आँचल
लेखक	:	तॉहा नसीम
हिंदी अनुवाद	:	परवेज़ अहमद
प्रकाशन	:	2026
मूल्य	:	150/-
प्रकाशक	:	ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन डी-319, डिफ़ेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-24

Printed by

Creative Star Publications
Okhla, New Delhi
Email: creativestar1122@gmail.com
Call: 8851148278, 9958380431

अनुक्रम

1.	प्रस्तावना	4
2.	तिरंगा आँचल	6
3.	ईद का तोहफ़ा	9
4.	मोहब्बत का शरबत	12
5.	आओ मिलकर पेड़ लगाएँ	15
6.	गोरा कौआ	18
7.	मल्होत्रा की मेहंदी	22
8.	जामुन का पेड़	26
9.	नकटा बंदर	30
10.	और छुक-छुक सो गया...	35
11.	रशीद की ईमानदारी	40
12.	शहीदे-वतन अब्दुल हमीद	47
13.	वतन की ख़ातिर	52
14.	ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन: एक नई पहल	57

प्रस्तावना

“तिरंगा आँचल” बच्चों के लिए लिखी गई हक़ीक़त पर आधारित कहानियों का एक संग्रह है, जिसमें मानवता, नैतिकता, सहिष्णुता और देशभक्ति के भावों को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि वे बच्चों और बड़ों, दोनों के लिए रुचिकर हों।

पुस्तक के लेखक तॉहा नसीम एक अनुभवी लेखक और साहित्यकार हैं, जिनमें बाल साहित्य और धार्मिक व नैतिक विषयों पर लेखन की विशेष प्रतिभा है। उन्होंने अब तक 70 से ज़्यादा किताबें लिखी हैं, जिनमें से कुछ बेस्ट सेलर रही हैं।

तॉहा नसीम के व्यक्तित्व में जो स्पष्टता, विनम्रता, गंभीरता और ईमानदारी है, वही उनकी कहानियों के पात्रों में भी दिखाई देती है। तॉहा नसीम की ख़ासियत यह है कि वे अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं से कहानी के पात्रों का निर्माण करते हैं। भाषा और अभिव्यक्ति की सरलता के साथ-साथ वे साहित्यिक पहलुओं का भी विशेष ध्यान रखते हैं। चूँकि तॉहा नसीम पुरानी दिल्ली के एक बौद्धिक परिवार से ताल्लुक रखते हैं, इसलिए दिल्ली की संस्कृति और परंपराओं तथा उसकी गलियों में होने वाले आयोजनों पर उनकी विशेष नज़र रहती है।

यह पुस्तक “तिरंगा आँचल” नैतिकता, मानवीयता, सहिष्णुता, देशभक्ति और ईमानदारी से ओतप्रोत कहानियों का एक संग्रह है, जिसे लेखक ने विशेष रूप से ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन के लिए तैयार किया है। पुस्तक में कई ऐसी कहानियाँ हैं जो पाठक को भावुक कर देती हैं।

वर्तमान युग में, जहाँ लोग अपने अतीत से कटते जा रहे हैं और मशीनों की गिरफ़्त में फँसते जा रहे हैं, अपनी संस्कृति, नैतिकता और सहिष्णुता को भूल रहे हैं, ऐसे में “तिरंगा आँचल” का महत्व और भी बढ़ जाता है।

तॉहा नसीम की रचनाएँ पढ़कर किसी उर्दू शायर का यह शेर याद आता है:

वही कहा है जो महसूस कर लिया है दोस्त

मेरी बयाज़ में हूरों के वाक़िआत नहीं

चूँकि ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन नैतिकता, सहिष्णुता, देशभक्ति और मानवता पर आधारित साहित्य को प्रकाशित करने में सक्रिय है, इसलिए "तिरंगा आँचल" हमारी नई पीढ़ी की जानकारी के लिए इस श्रृंखला की सर्वश्रेष्ठ कड़ी साबित होगी।

हम ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन की ओर से नसीम साहब के आभारी हैं कि उन्होंने बहुत ही कम समय में इस पुस्तक को तैयार किया। हमें विश्वास है कि पाठकों को हमारे अन्य प्रकाशनों की तरह "तिरंगा आँचल" भी पसंद आएगी।

डॉ. हफ़ीज़ुर्रहमान
संयोजक
ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन, नई दिल्ली

तिरंगा आँचल

"अम्मी मैं भी तिरंगा ख़रीदूंगा।" सैफ़ ने माँ से फिर कहा। "लेकिन बेटे मेरे पास पैसे नहीं हैं। आज काम भी नहीं है, कहाँ से लाऊँ?" मास्टर साहब ने सब बच्चों से घर पर तिरंगा लगाने को कहा है। "मैं भी लगाऊँगा।" माँ ने पल्लू से बँधे पैसे गिने तो सिर्फ़ 20 रूपये थे। उन्हीं पैसों का माँ को आटा ख़रीदना था। उसने सोचा 5 रूपये वाला काग़ज़ का झण्डा दिलवा दूँ लेकिन वह बारिश में भीग कर ख़राब हो जाएगा। माँ का जवाब सुनकर वह निराश हो गया और खिड़की में खड़ा होकर सड़क पर देखने लगा। बारिश अब भी हो रही थी और सड़क नाला बनी हुई थी। उसकी छत से भी पानी टपक रहा था। सैफ़ की माँ सड़क किनारे भुट्टे बेचती थी लेकिन बारिश में सड़क पर बैठना असम्भव था।

वह सैफ़ के वालिद (पिता) के गुज़र जाने के बाद छोटे-मोटे काम करके अपना और दो बच्चों का पेट पालती थी। लेकिन सैफ़ तो आज़ादी का निशान तिरंगा घर पर फहरा कर स्वतंत्रता सेनानियों को श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता था। सैफ़ ने देश की आज़ादी के लिए टीपू सुल्तान, बहादुरशाह ज़फ़र, भगत सिंह, अशफ़ाक़ुल्लाह ख़ान और रामप्रसाद बिस्मिल की बहादुरी और शहादत की कहानियाँ सुन रखी थी। उन्हीं को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए वह झण्डा लगाना चाहता था लेकिन ग़रीबी के कारण वह एक झण्डा भी नहीं ख़रीद सकता।

माँ को भी बच्चे के जज़्बे का एहतराम (सम्मान) था। वह बेचारी मजबूर थी। दरअसल पेट की आग हर तरह के जश्न को भुला देती है। आज़ादी से पहले भी ग़रीब ऐसा ही था और बाद में भी। उसे सिर्फ़ ज़िन्दा रहने के लिए भाग-दौड़ करनी थी और वही स्थिति आज भी है। माँ को कुछ ख़्याल आया और उसने पुराना सन्दूक़ और गठरियाँ खोलीं और कुछ तलाश करने लगी। उसने अपने शौहर (पति) के प्यार की निशानी हरे नारंगी रंग का दुपट्टा निकालकर काटा, बीच में सफ़ेद पट्टी जोड़ी और झण्डा बना दिया। एक छड़ी में उसे लगाकर खिड़की में उसे टाँग दिया। सुबह सैफ़ की आँख खुली तो खिड़की में तिरंगा लहरा रहा था। माँ ने आँचल को झण्डे में बदल दिया था। तिरंगा आज़ादी और माँ की ममता का इज़हार कर रहा था।

मजाज़ लखनवी के शेर के अनुसार उस माँ ने वही किया:

तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही ख़ूब है लेकिन
तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था

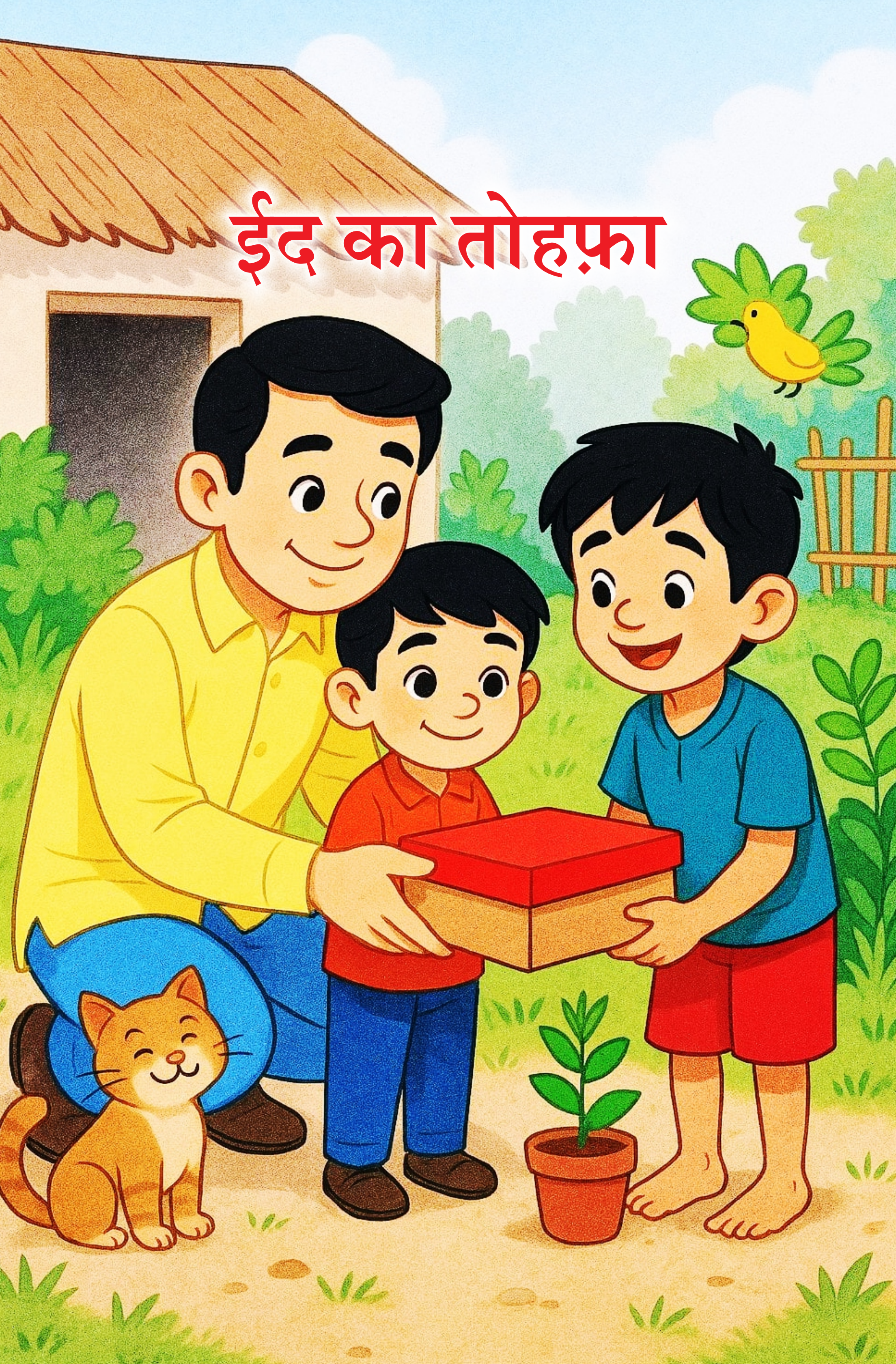
ईद का तोहफ़ा

★

शामू ने नर्म चमड़ा संभाल कर रखा था। वह दिवाली से पहले अपने बेटे राजू के लिए जूते बनाना चाहता था। शामू घर पर ही जूते बनाता और उन्हें बाज़ार में बेचता। उसके बनाए जूते मज़बूत और सस्ते होते थे। वह एक मेहनती और ईमानदार आदमी था। उसे जितने पैसे मिल जाते उन्हीं से ख़ुश हो जाता।

राजू का सबसे अच्छा दोस्त सलीम था। सलीम अपनी अम्मी और भाई के साथ राजू के पड़ोस में रहता था। दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते और साथ-साथ खेलते थे। सलीम के अब्बा रिकशा चलाते थे। एक साल पहले उनका इंतिक़ाल (देहांत) हो गया था। सलीम की अम्मी कपड़े सीकर अपना घर चलाती थीं। सलीम पढ़ाई में बहुत अच्छा था। वह हमेशा कक्षा में फ़र्स्ट आता था।

राजू और सलीम एक दूसरे को भाई की तरह चाहते थे। सलीम के पास न तो अच्छे कपड़े थे और न जूते। स्कूल से जो जूते उसे मिले थे वह जगह-जगह से फट गए थे। उन्हीं कि मरम्मत कराकर वह पहनता था।

ईद आने वाली थी। सभी ईद की तैयारियों में व्यस्त थे। इलाक़े के लोग घरों में साफ़-सफ़ाई और रंगाई करा रहे थे। महिलाएँ और बच्चे नए कपड़े और जूते ख़रीद रहे थे लेकिन सलीम के घर ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। उसकी माँ सिलाई करके जो कुछ कमाती वह खाने-पीने और घर की दूसरी ज़रूरतों पर ख़र्च हो जाता। कक्षा के

बच्चे नए कपड़ों और जूतों की बात करते तो सलीम दुखी हो जाता। वह सोचता कि क्या इस साल ईद पर उसके जूते और कपड़े नहीं आएँगे। सलीम दुखी मन से बच्चों की बातें सुनता। जब ज़्यादा दुखी हो जाता तो राजू के साथ अपना ग़म बाँट लेता। राजू उसकी बात सुनकर ख़ुद भी दुखी हो जाता। वह सोचता कि वह कैसे अपने दोस्त की मदद करे। वह ख़ुद ग़रीब था और छोटा भी था। एक दिन उसे याद आया कि उसके पिता ने उसके जूते बनाने के लिए बेहतरीन चमड़ा ख़रीदा हुआ है। वह दिवाली पर उसके लिए जूते बनाएँगे। वह अपने पिता के पास गया और उनसे कहा कि वह उस चमड़े से सलीम के लिए जूते बना दें। शामू ने उसे बताया कि उनके पास बस इतना ही चमड़ा है। अगर सलीम के लिए जूते बना दिए तो दिवाली पर राजू के लिए जूते नहीं बन पाएँगे। राजू ने कुछ सोचकर शामू से कहा, "ठीक है, मैं दिवाली पर नए जूते नहीं पहनूंगा। मैं पुराने जूतों से काम चला लूंगा। आप सलीम के लिए जूते बना दें। वह ख़ुश होगा तो मुझे भी ख़ुशी होगी। हम उसकी इतनी तो मदद कर ही सकते हैं।"

यह सुनकर राजू के पिता ख़ामोश हो गए। सलीम और राजू बराबर के थे। उनके पाँव का साइज़ भी बराबर था।

अगले दिन शामू ने सलीम के लिए जूते बनाने शुरू कर दिए। ईद से एक दिन पहले उन्होंने जूते एक डिब्बे में रखे और सलीम को ईद की मुबारकबाद देने उसके घर पहुँच गए। शामू ने सलीम के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया और डिब्बा देते हुए कहा, "हमारे जाने के बाद डिब्बा खोलना।"

बाप-बेटा सलीम के घर से निकले तो बहुत ख़ुश थे। उन्होंने सलीम को ईद का ऐसा तोहफ़ा दिया था जिससे उसके घर में भी ईद की ख़ुशियाँ लौट आई थीं।

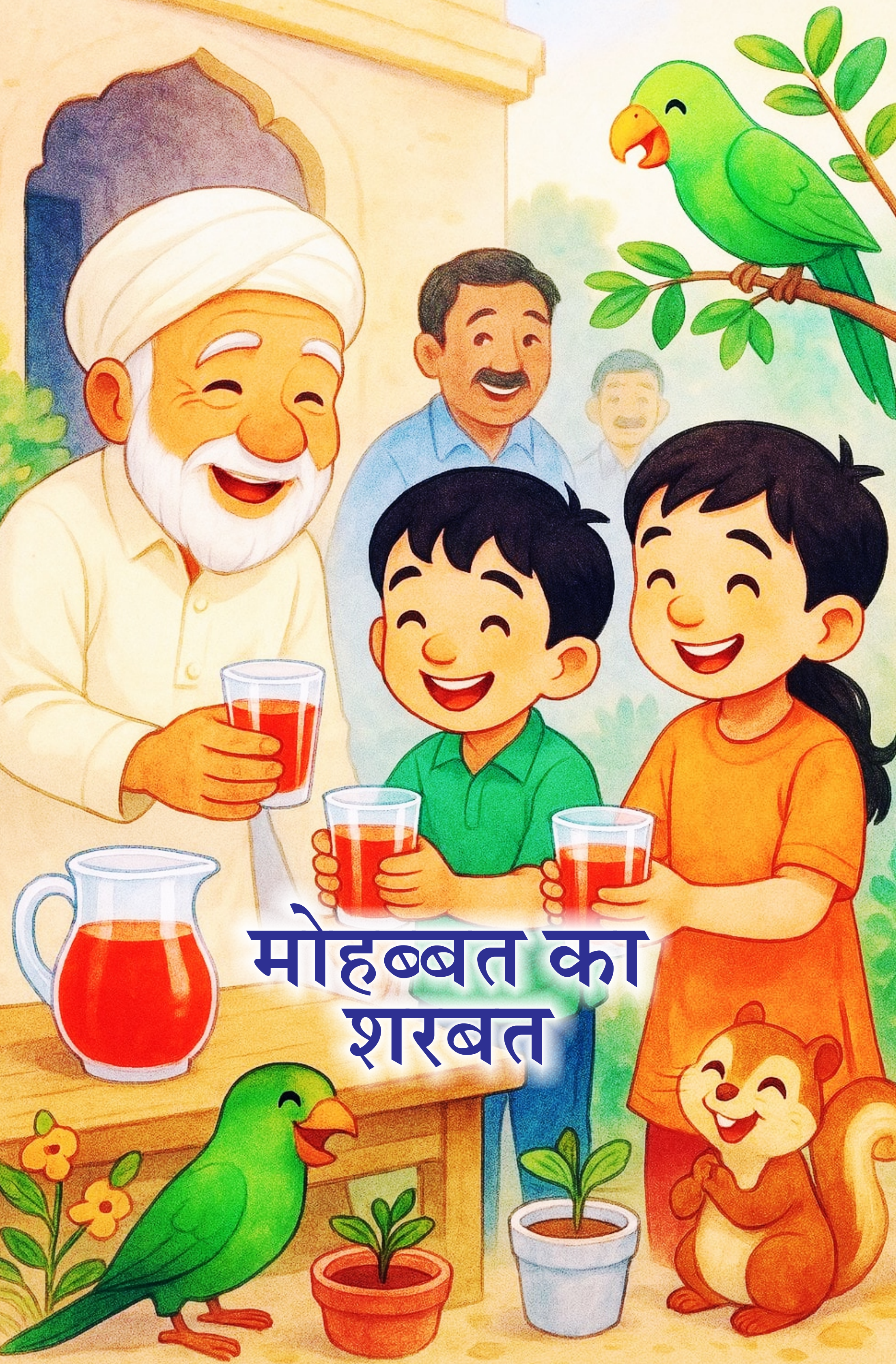
मोहब्बत का
शरबत

★

उनका नाम तो स्टीफ़न था लेकिन मोहल्ले में वह मास्टर जी के नाम से मशहूर थे। वह एक रिटायर्ड स्कूल टीचर थे। अकेले रहते थे। न बीवी-बच्चे न भाई-बहन। मोहल्ले के बच्चे उनसे ट्यूशन पढ़ने आते थे। मास्टर जी बहुत कम पैसे लेते थे। अगर कोई ग़रीब बच्चा आ गया तो उसे मुफ़्त पढ़ाते थे। हालांकि ईसाईयों की बस्ती के सब लोग दूसरे इलाक़ों में जाकर बस गए थे लेकिन मास्टर जी ने अपना घर नहीं छोड़ा था। वह उस जगह से बहुत मोहब्बत करते थे। उनका कहना था कि मैं इसी घर में पैदा हुआ था और यहीं मरूँगा। मास्टर जी ने शादी क्यों नहीं की और उनके रिश्तेदार कहाँ थे, कोई नहीं जानता था।

इस बार यौमे-आशूरा (10 मुहर्रम) सख़्त गर्मी में आने वाला था। स्कूलों की छुट्टियाँ हो गई थीं। इस मोहल्ले के एक बुज़ुर्ग चचा रहमान हर साल शरबत की सबील लगाया करते थे। मोहर्रम से पहले उनका देहांत हो गया तो मोहल्ले के बच्चों को फ़िक्र हुई कि सबील (मुहर्रम में शर्बत पिलाने का स्थान) कौन लगाएगा। चचा तो मोहर्रम आने से पहले ही लोगों से चंदा लेने लगते थे। चूंकि वह पुराने आदमी थे। सभी उनकी इज़्ज़त करते थे और ख़ुशी-ख़ुशी शरबत की सबील लगाने के लिए चंदा देते थे।

असलम, ज्योति और इमरान मास्टर जी के ख़ास शागिर्द थे। एक दिन वह ट्यूशन के लिए आए तो आपस में शरबत की सबील लगाने के बारे में बातें करने लगे। बच्चों को सबील पर शरबत पिलाना बहुत अच्छा लगता था। मोहल्ले के बच्चे

चचा के साथ शरबत बनवाते और लोगों को शरबत पिलाते। रहमान चचा के इंतिक़ाल (देहांत) के बाद लगता था कि सबील नहीं लगेगी।

मास्टर जी बच्चों की बातें सुन रहे थे। वह जानते थे कि चचा रहमान बरसों से सबील लगा रहे थे और वह ख़ुद भी चंदा दिया करते थे। उनके इंतिक़ाल के बाद यह सिलसिला बंद होने को था।

हमारे त्यौहार और मेले-ठेले सदियों से लोगों के मेल-मिलाप का अहम साधन रहे हैं। लोग ख़ुशी-ख़ुशी एक दूसरे के त्यौहारों में शामिल होते हैं। मास्टर जी नहीं चाहते थे कि यह सिलसिला बंद हो। उन्होंने बच्चों से कहा कि मैं कोशिश करता हूँ तुम्हारी सबील लगे। दरअसल मास्टर जी के पड़ोसी और शागिर्द ही उनका ख़ानदान थे। वह इस परंपरा को बरक़रार रखना चाहते थे। सबील उनके मोहल्ले की पहचान थी।

मुहर्रम का महीना शुरू हो चुका था। एक दिन बच्चे पढ़ने आए तो मास्टर जी ने उन्हें ख़ुशख़बरी सुनाई कि इस बार भी सबील लगेगी। बच्चों को यक़ीन नहीं हुआ कि मास्टर जी कैसे सबील लगाएंगे। मास्टर जी उनके चेहरे के हावभाव देखकर समझ गए कि बच्चे उनकी बात पर भरोसा नहीं कर रहे हैं। छुट्टी के वक़्त वह बच्चों को लाला जी की दुकान पर ले गए और लाला जी से कहा कि बच्चों को शरबत बनाने का सामान दिखा दो। लाला जी ने दुकान के एक हिस्से में रखी रूह-अफ़्ज़ा की बोतलें, चीनी और पिस्ता बादाम दिखाए। यह देख कर बच्चे बहुत ख़ुश हुए। यौमे-आशूरा पर सबील उसी जगह लगाई गई जहाँ बरसों से लगती आ रही थी। दूध वाले ने 50 लीटर दूध पहुँचा दिया। बच्चों ने मास्टर जी और दूसरे बच्चों के साथ मिलकर शरबत बनाया। मोहल्ले के सभी दुकानदारों ने मास्टर जी का नाम सुनकर सस्ता सामान दिया था। जब शरबत बंटने लगा तो बड़ी संख्या में बच्चे और बड़े इकट्ठा हो गए। कई बुज़ुर्ग घर से डोलची लिए हुए आए और बोले! भाई मोहब्बत का शरबत मुझे भी दे दो और उनकी बात सुनकर सभी हँस दिए।

आओ मिलकर
पेड़ लगाएँ

स्कूल की छुट्टियाँ हो चुकी थीं। हालांकि स्कूल से होमवर्क मिला था। फिर भी बच्चे कुछ नया करने की सोच रहे थे लेकिन समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें। उनके मोहल्ले में ना तो कोई पार्क था ना ही कोई कम्युनिटी सेंटर, जहां जाकर बच्चे खेल सकें या कुछ सीख सकें। फ़ाइज़ ने बच्चों से कहा: "हमारे भाई नदीम बहुत समझदार हैं। उनसे सलाह लेते हैं कि हम छुट्टियों में ऐसा क्या करें जिससे हमें कुछ सीखने का मौक़ा मिले।"

भाई नदीम एक व्यापारी थे और सामाजिक कामों में आगे-आगे रहते थे। वह एक पढ़े लिखे और समझदार इंसान थे। शाम को कुछ बच्चे फ़ाइज़ के साथ मिलकर भाई नदीम के पास गए। उन्होंने उनसे सलाह ली कि हम छुट्टियों में क्या करें।

भाई नदीम ने कुछ सोचा और बोले: "बच्चों! जिस समाज में हम रहते हैं हमें उसके लिए कुछ करना चाहिए।"

बच्चों के कुछ समझ नहीं आया और वह मुंह खोले उनकी तरफ़ आश्चर्य से देखने लगे।

भाई नदीम समझ गए कि बच्चों को बात समझ नहीं आई। उन्होंने कहा: "जो लोग हमारे मोहल्ले में रहते हैं वह क्या कहलाते हैं?"

बच्चों ने एक साथ जवाब दिया: "पड़ोसी"

हम और हमारे आसपास रहने वाले; यह समझ लो हमारी बस्ती के लोग मिलकर समाज बनाते हैं। समाज के लिए हमें कुछ करना चाहिए। यही एक अच्छा नागरिक होने की पहचान है। तो बच्चों हम छुट्टियों में अगर पुराने डिब्बे, कनस्तर और बोतलें जमा करके उनमें पौधे लगाएं तो कैसा रहेगा?

बच्चों ने कहा: "बड़ा मज़ा आएगा।"

नदीम भाई ने पूछा: "यह बताओ कि पेड़-पौधे लगाने से क्या-क्या फ़ायदे होते हैं?"

बच्चों ने एक आवाज़ में कहा: "पौधों से हमें ऑक्सीजन मिलती है। यह प्रदूषण ख़त्म करते हैं। हरियाली देखने से मन ख़ुश होता है।"

"बिल्कुल!" नदीम भाई मुस्कुरा कर बोले।

नदीम भाई के साथ मिलकर बच्चों ने एक दिन उन जगहों की लिस्ट बनाई जहां पौधे लगाने थे। उन जगहों को जाकर देखा जहां लोग कूड़ा करकट फेंक देते थे।

नदीम भाई ने बच्चों को पेड़ पौधे लगाने और सफ़ाई करने के तरीक़े बताए। उनके दोस्त भी इस काम में उनकी मदद करने को तैयार हो गए।

बच्चों ने अपने घरों और दुकानों से पुराने डिब्बे, कनस्तर और प्लास्टिक की बोतलें जमा कीं। मस्जिद के इमाम साहब ने भी लोगों से बात की कि वह बच्चों की मदद करें। किसी ने पौधे लाकर दिए तो किसी ने खाद और मिट्टी का इंतिज़ाम किया। बच्चों ने ड्रॉइंग शीट्स पर पौधे बनाए और सफ़ाई के बारे में नारे लिखे और सब अपने-अपने काम में लग गए। पहले तो लोगों को यह सब बड़ा अजीब लगा लेकिन बच्चों का जज़्बा देखकर उनका साहस बढ़ाया। कुछ ही महीनों में मोहल्ले में हर तरफ़ सफ़ाई और हरियाली नज़र आने लगी।

यह देखकर समझदार लोग बोले: "अगर हर कोई इसी तरह अपने इलाक़े को साफ़-सुथरा बनाने और पेड़-पौधे लगाने में दिलचस्पी लेने लगे तो हर इलाक़ा बाग़ (गुलज़ार) बन जाएगा।"

गोरा कौआ

अगर किसी कौए को गोरा कह कर बुलाया जाए तो आपको हंसी आ ही जाएगी। कौआ तो काला होता है लेकिन जिस कौए की हम बात कर रहे हैं वह तो हद से ज़्यादा काला है। इसके बावजूद मुन्नी उससे बहुत प्यार करती है। यह बस मुन्नी की हर बात समझता है। बहुत वफ़ादार और समझदार कौआ है।

सवाल उठता है कि उसका नाम गोरा कैसे पड़ा?

हुआ यूँ कि एक दिन मुन्नी अपने दोस्तों और बहन भाईयों के साथ बाग़ में खेल रही थी। बच्चों को पेड़ के नीचे कुछ पड़ा हुआ नज़र आया। वह जो कुछ भी था हिलडुल रहा था। मुन्नी आगे बढ़ी और उसने ध्यान से देखा तो वह कौए का बच्चा था और बुरी तरह ज़ख़्मी था। मुन्नी ने उसे उठा लिया और चारों तरफ़ देखा कि शायद उसके माँ-बाप आकर उसे ले जाएँ लेकिन कोई नज़र न आया। इसलिए बच्चों ने फ़ैसला किया कि उस बच्चे की मरहम पट्टी करें और ठीक हो जाने पर उसे बाग़ में छोड़ दें।

अब्बा के फ़र्स्ट एड बॉक्स में से दवा निकाल कर उसके ज़ख़्मों पर लगाई। बच्चों ने उसके लिए एक डिब्बे में घास-फूस रख कर आरामदेह बिस्तर बनाया और खाने-पीने का इंतिज़ाम किया। घर के बड़ों ने बच्चों को घर पर कौआ न रखने का

मशवरा दिया लेकिन बच्चों ने साफ़ कह दिया कि वह एक ज़ख़्मी परिंदे को ऐसे ही नहीं छोड़ेंगे।

कुछ हफ़्तों बाद ही कौए का बच्चा स्वस्थ हो गया। उसके नए पंख निकल आए। वह मुन्नी का लाडला था। उसे मुन्नी की गोद में बहुत आराम मिलता था। एक दिन पड़ोस की एक लड़की शालू ने मुन्नी का मज़ाक़ उड़ाया कि वह एक काले-कलूटे को पाल रही है। कौआ भी कोई पालने की चीज़ है। पालना है तो तोता पालो या कबूतर पालो।

मुन्नी को उसकी बात बहुत बुरी लगी और वह बोली: "यह काला कलूटा नहीं बल्कि गोरा है।" दूसरे बच्चे यह बात सुनकर हंसने लगे और सभी एक साथ 'गोरा-गोरा' कहने लगे। कौए का बच्चा उनका शोर सुनकर ख़ुशी से कांव-कांव करने लगा। ऐसा लगता था कि उसे यह नाम पसंद है। उसी दिन से उसका नाम गोरा पड़ गया। इंसानों के बीच रहने से वह साफ़-सुथरी चीज़ें खाता। कभी कूड़े या ख़राब चीज़ों में मुंह न डालता। मुन्नी ने कई बार उसे उड़ाने की कोशिश की लेकिन वह जाने को तैयार नहीं हुआ। कभी उसकी आवाज़ सुनकर कौए छत की मुंडेर पर आ जाते और अपनी ज़बान में क्या-क्या बातें करते लेकिन वह उनके साथ नहीं जाता था। वह अपने आपको इंसान समझने लगा था। मुन्नी उसे गोरा कह कर पुकारती तो वह दौड़ता हुआ आता, अगर किसी ऊँची जगह पर बैठा होता तो उड़ कर आ जाता। गोरा पूरे इलाक़े में मशहूर हो गया था।

एक दिन मुन्नी की दादी ने उसे समझाया कि गोरे को उसकी बिरादरी के हवाले कर दिया जाए। वह उनके साथ ख़ुश रहेगा। इस तरह पिंजरे में बंद रखना अच्छी बात नहीं है।

मुन्नी ने दादी को बताया कि वह भी यही चाहती है लेकिन गोरा जाने को तैयार नहीं है।

एक दिन अब्बू के दोस्त ने बताया: "लाल क़िले के सामने परिंदों का अस्पताल है। वहाँ परिंदों का इलाज होता है। इस अस्पताल में बेसहारा परिंदों के रहने का भी

इंतिज़ाम है। मैंने वहाँ कई कौए देखे हैं। यह उनके साथ ख़ुश रहेगा। लेकिन मुन्नी गोरे को नहीं छोड़ना चाहती थी। उसने सबसे कहा कि गोरा यहाँ बहुत ख़ुश है। वह मेरे साथ खेलता है। मेरा कहना मानता है। कोई गंदगी नहीं करता। जो कुछ हम खाते हैं उसे भी खिला देते हैं। फिर मैं क्यूँ उसे बेसहारा परिंदों के साथ छोड़ूँ।

मुन्नी की बात सुनकर सब ख़ामोश हो गए।

एक दिन मुन्नी स्कूल गई हुई थी तो अब्बू गोरे को परिंदों के अस्पताल में छोड़ आए।

मुन्नी को बताया कि कुछ कौए आए थे और मुंडेर पर बैठ कर ख़ूब शोर मचा रहे थे। गोरा उनके साथ चला गया, चलो अच्छा हुआ।

यह सुनकर मुन्नी बहुत रोई। उस रोज़ उसने खाना भी नहीं खाया। घर वालों ने बहुत समझाया लेकिन वह समझने को तैयार नहीं हुई। उसे गोरा बहुत याद आ रहा था। उसे जो कौवा नज़र आता वह उसे गोरा समझती और नाम लेकर पुकारती। उसने अपने साथियों के साथ बाग़ में जाकर तलाश किया लेकिन गोरा नहीं मिला।

दिन गुज़रते गए और मुन्नी ने सब्र कर लिया कि अब गोरा वापस नहीं आएगा।

एक दिन मुन्नी स्कूल से घर आकर खाना खा रही थी कि छत से किसी कौए के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ तो गोरे की थी। वह दौड़ती हुई आँगन में आई और छत की तरफ़ देखा। वहाँ गोरा बैठा था। शायद उसने परिंदों के अस्पताल से ख़ुद को आज़ाद कर लिया था। वह उड़ता हुआ आया और मुन्नी के कंधे पर बैठ गया। मुन्नी ख़ुशी से चिल्लाने लगी "गोरा आ गया, गोरा वापस आ गया।"

मल्होत्रा की मेहंदी

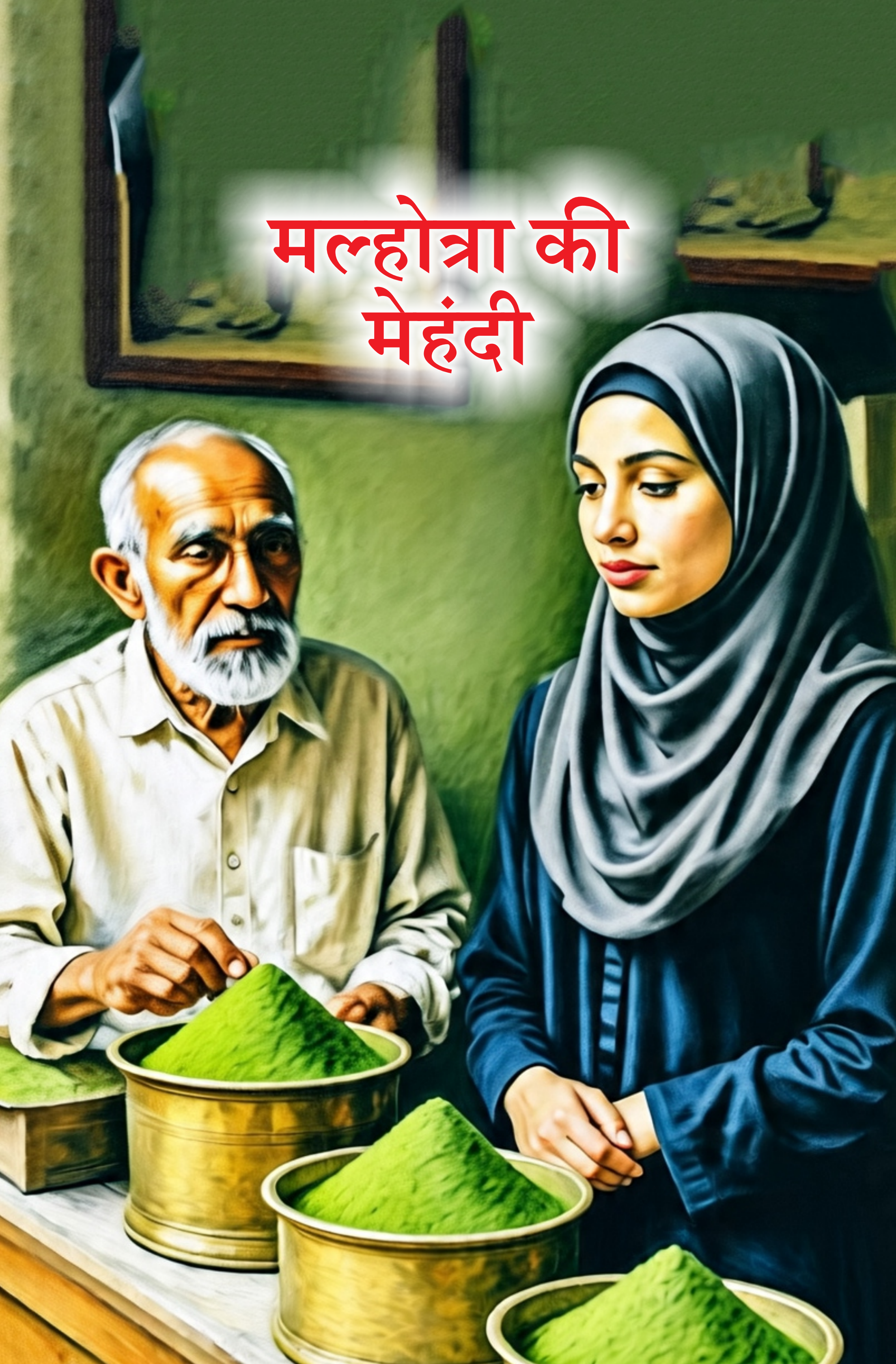

"हिंदुस्तान का दिल दिल्ली और दिल्ली का दिल चाँदनी चौक हमारी सांझी विरासत का गवाह है। तीन सदियाँ गुज़र चुकी हैं और आज भी यह हमारी गंगा-जमुनी सभ्यता का अहम केंद्र है। यह बाज़ार ऐतिहासिक महलों, इबादतगाहों, कूचों और हवेलियों का ख़ूबसूरत संगम है।" मल्होत्रा मेहंदी वाले ने आलिया को यह बातें उर्दू में बताईं। मल्होत्रा मेहंदी वाले की दुकान कटरा नील में है। यह एक पुरानी दुकान है जिसमें मेहंदी और पूजा का सामान पुराने पीतल के बरतनों में रखा जाता है। आलिया की ख़ाला उसी दुकान से मेहंदी ख़रीदती हैं। उन्होंने ही आलिया को बताया था कि मल्होत्रा की दुकान से अच्छी मेहंदी कहीं और नहीं मिलती।

आलिया जिस वक़्त मल्होत्रा मेहंदी वाले की दुकान पर गई तो उसने देखा मँझले क़द के एक गोरे-चिट्टे बुज़ुर्ग जिन्होंने चश्मा लगा रखा था, बंदरों को केले और आम उछाल-उछाल कर दे रहे थे। किसी ने बताया यही मल्होत्रा जी हैं। आलिया ने उनको बताया कि वह उनकी दुकान से मेहंदी ख़रीदने आई है, तो मल्होत्रा जी ने अपनी दुकान पर रखे पुराने स्टूल पर बैठने को कहा। जब सारे केले और आम ख़त्म हो गए तो वह दुकान पर आए और आलिया से पूछा मेहंदी किसके लिए चाहिए। आलिया ने बताया कि मेरे स्कूल में मेहंदी प्रतियोगिता है। जिसकी मेहंदी

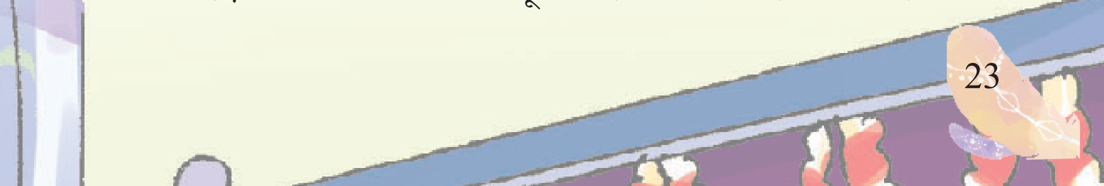

का डिज़ायन और कलर सबसे अच्छा होगा उसे ईनाम मिलेगा। मेरी ख़ाला ने आपकी दुकान का पता दिया है। मल्होत्रा जी अपने पुराने ग्राहकों को जानते थे। उन्होंने आलिया से इस बारे में पूछा तो उसने अपने ख़ालू अब्दुर्रहीम का नाम लिया और मल्होत्रा जी पहचान गए। उन्होंने बताया कि मैं कई तरह की मेहंदी बेचता हूँ। बालों में लगाने वाली, हाथ-पांव में लगाने वाली और सर्दियों वाली मेहंदी।

मल्होत्रा जी ने बताया: "हम सर्दियों के लिए अलग मेहंदी बनाते हैं। दरअसल मेहंदी की तासीर (तात्विक प्रभाव) ठंडी होती है। ठंड के प्रभाव को कम करने के लिए लौंग और दूसरी जड़ी बूटियाँ मिलाते हैं।

आलिया को उनकी बातें बड़ी दिलचस्प लग रही थीं। मल्होत्रा जी मेंहंदी बेचते-बेचते चाँदनी चौक और उसकी संस्कृति के बारे में बहुत कुछ बता रहे थे। लगता था कि उन्हें चाँदनी चौक से इश्क़ है और उसका इज़हार करने में वह गर्व महसूस करते हैं। उन्होंने बताया यह दुकान अकबर शाह द्वितीय के दौर की है। होली, दिवाली और पूजा का सामान हमारी ही दुकान से लाल क़िले में भी जाता था। इसलिए हमारे पूर्वजों कि बहुत इज़्ज़त थी। वह आपसी मोहब्बत और भलाई का दौर था। हमारे त्यौहार और मेले ठेले हमारी संस्कृति का हिस्सा थे।

इसी बीच मल्होत्रा जी दुकान के अंदर गए और प्लास्टिक की एक डिबिया लेकर आए। डिबिया खोली तो दुकान में गुलाब और कपूर की ख़शबू फैल गई। डिबिया में मुल्तानी मिट्टी जैसा पेस्ट था। मल्होत्रा जी ने बताया कि कुछ लोग होली पर रंग लगवाना पसंद नहीं करते। कुछ लोगों को रंगों से एलर्जी होती है। इसलिए हमने यह ख़ास रंग बनवाया है। इससे न तो कपड़ों पर दाग-धब्बे पड़ते हैं और न ही एलर्जी होती है। लो एक डिबिया तुम भी रख लो, यह मेरी तरफ़ से तोहफ़ा है।

उन्होंने मेहंदी का पैकेट और सूखे रंग की डिबिया एक थैली में रख कर आलिया को दी। आलिया पर्स से पैसे निकालने लगी तो मल्होत्रा जी ने मना कर दिया। उन्होंने कहा: "बेटा! तुम्हारे स्कूल में मेहंदी लगाने की प्रतियोगिता है। अगर

तुमको इनाम मिल गया तो वही मेरी मेहंदी की क़ीमत होगी। जब वह दुकान से बाहर आई तो मल्होत्रा जी बोले: "अपने ख़ाला-ख़ालू को मेरा सलाम कहना।"

मल्होत्रा जी की दुकान पर जाकर आलिया को बहुत अच्छा लगा। उनकी बातों से हमारी शानदार सभ्यता और परम्पराओं की ख़ुशबू आ रही थी। वह रिक्शा में सवार हुई और रिक्शा बल्लीमारान की गलियों से गुज़रने लगा। उसे ऐसा लगा कि वह अकबर शाह द्वितीय और बहादुरशाह ज़फ़र के दौर (काल) को महसूस कर रही है जो मोहब्बत और भाईचारे का दौर था।

जामुन का पेड़

★

दादा जान बताते थे जब से उन्होंने होश संभाला, गली के किनारे लगे जामुन के पेड़ को देख रहे हैं। यह बहुत पुराना पेड़ है और उसी की वजह से हमारी गली का नाम जामुन वाली गली है। इस पेड़ पर आज भी गर्मी के मौसम में जामुन उगते हैं। गुच्छे के गुच्छे लगते हैं। हालांकि बाज़ार में एक से एक जामुन बिकती है लेकिन पेड़ से जामुन तोड़कर खाने का मज़ा ही कुछ और है। पुराने घर धीरे-धीरे ख़त्म हो रहे हैं और उनकी जगह बहुमंज़िला इमारतें बन रही हैं। इसका सबसे बड़ा नुक़सान यह हुआ है कि शहर से हरियाली ख़त्म होती जा रही है। बुलबुल, मैना और कबूतर उन पेड़ों पर घोंसले बनाते थे, उनके भी आशियाने उजड़ गए। पेड़ न होने से शहर में एक घुटन सी है।

हमारे मोहल्ले में दो ही पेड़ बचे हैं। एक सरकारी स्कूल के मैदान में पीपल का पेड़ और दूसरा हमारी गली में जामुन का पेड़। यह पेड़ राजा भाई के घर से मिला हुआ है बल्कि उसका आधा हिस्सा तो उनके आँगन में ही है। राजा भाई के लड़कों की शादी के बाद उन्होंने यही सोचा कि घर को तुड़वाकर दोबारा बनाएँ। ग्राउण्ड फ़्लोर पर दुकानें बनें और उसके ऊपर तीन मंज़िला इमारत बन जाएगी लेकिन ज़्यादा जगह के लिए जामुन का पेड़ काटना पड़ेगा।

अब्बा ने इस बात का ज़िक्र किया तो फ़हीम, शबाना और गुड्डू को बहुत दुख हुआ कि इतना पुराना पेड़ जिससे उनकी गली की पहचान है, उसे काट दिया जाएगा। गली के बच्चों और बड़ों की ज़ुबान पर पेड़ की चर्चा शुरू हो गई। वह नहीं चाहते थे कि इतने पुराने पेड़ को काट दिया जाए। राजा भाई के दो पोते असद और असलम हैं। बच्चों ने उनसे बात की। असलम और असद ने भी बच्चों की हाँ में हाँ मिलाई कि इस पेड़ को नहीं कटना चाहिए। शबाना, फ़हीम और गुड्डू ने अपने अब्बा से बात की कि वह राजा भाई के लड़कों से बात करें कि वह इस पेड़ को न कटवाएँ। अब्बा ने कहा कि उन्हें बड़े घर की ज़रूरत है। पेड़ काटने के बाद वहाँ छज्जे निकलेंगे इसलिए वह इस पेड़ को कटवा रहे हैं।

अब्बा का जवाब सुनकर बच्चों को बड़ी मायूसी हुई।

मोहल्ले के ज़्यादातर बच्चे स्कूल से आने के बाद मस्जिद में क़ुरआन शरीफ़ पढ़ने जाते थे। वहाँ भी पेड़ के काटे जाने की बात हो रही थी। असलम और असद भी क़ुरआन शरीफ़ पढ़ने आते थे। एक दिन सभी बच्चों ने इमाम साहब से गुज़ारिश की कि वह राजा भाई के लड़कों से बात करें कि वह जामुन के पेड़ को न काटें। हो सकता है कि वह आपकी बात मान लें। इमाम साहब ने बच्चों के कहने पर राजा भाई के लड़कों से बात की कि वह जामुन के पेड़ को न कटवाएँ। उन्होंने धार्मिक दृष्टिकोण से पेड़ों की अहमियत समझाई। राजा भाई के बेटों ने उनकी बात ध्यान से सुनी और कहा कि उनका ख़ानदान बड़ा हो रहा है और जगह कम पड़ रही है। इसलिए मजबूरी है कि हमें पेड़ों को कटवाना पड़ रहा है।

बच्चे बहुत उदास थे। वह नहीं चाहते थे कि जामुन का पेड़ कटे। इसलिए गली के सभी बच्चों ने उस पेड़ को बचाने के लिए प्रोग्राम बनाया और उसको नाम दिया "मुझे जीने दो"। इस प्रोग्राम के तहत बच्चों ने ड्राइंग शीट पर कुछ नारे लिखे और उन्हें आस-पास की गलियों में चिपका दिया। पेड़ पर भी कुछ पोस्टर बनाकर लगा दिए। बच्चों की इन कोशिशों से जामुन का पेड़ पूरे मोहल्ले और राहगीरों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया।

यह देखकर राजा भाई के बेटों ने बच्चों को घर बुलाकर उन्हें समझाने की कोशिश की कि वह बात को समझें। अगर उन्हें जामुनें खाने का शौक़ है तो हर मौसम में वह टोकरा भर कर उन्हें जामुनें खिलाएँगे। लेकिन बच्चों ने उनकी बात नहीं मानी और बातचीत नाकाम हो गई। राजा भाई के बेटों ने असलम और असद को सख़्ती से मना कर दिया कि वह गली के बच्चों के साथ न रहें और उनका घर से निकलना बंद कर दिया। मोहल्ले के समझदार लोगों ने बच्चों का यह जज़्बा देखा तो उन्होंने भी पेड़ न काटने की माँग शुरू कर दी। एक दिन वहाँ से किसी अख़बार का रिपोर्टर गुज़र रहा था। उसने पेड़ पर लगे पोस्टर्स और नारे देखे तो उसने उनकी तस्वीर खींच कर अख़बार में ख़बर लगा दी। उस ख़बर को देखकर दूसरे अख़बार वाले और टीवी चैनल भी वहाँ पहुँच गए। उन्होंने फ़हीम, शबाना और गुड्डू की कोशिशों की तारीफ़ की। जामुन का पेड़ पूरे शहर में मशहूर हो गया। इसके बावजूद राजा भाई के लड़के उसे कटवाने की ज़िद पर अड़े हुए थे। एक दिन उन्होंने लकड़हारों को बुलवाया। वह बड़ी-बड़ी आरियाँ, कुल्हाड़ियाँ और रस्से लेकर पहुँच गए। बच्चों को यह बात पता चली तो सारे बच्चे जामुन के पेड़ को बचाने दौड़े। मोहल्ले के ज़्यादातर बच्चे उनके साथ मिल गए और सभी उस पेड़ को घेर कर खड़े हो गए। अजब तमाशा था। मोहल्ले के लोग भी वहाँ जमा हो गए और जामुन के पेड़ को बचाने के लिए नारे लगाने लगे। मामले ने इतना तूल पकड़ा कि नगर निगम के पार्षद और अधिकारी भी वहाँ पहुँच गए। इलाक़े के पार्षद ने राजा भाई के लड़कों को सख़्ती से मना कर दिया कि आप इस पेड़ को नहीं कटवा सकते। बल्कि वहाँ एक नोटिस भी चिपका दिया कि इस पेड़ को काटने वाले के ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्यवाही होगी।

बाद में राजा भाई के लड़के भी राज़ी हो गए और उन्होंने पेड़ को बचाते हुए अपना घर बनाने का फ़ैसला किया।

अगले दिन फ़हीम, शबाना और गुड्डू स्कूल पहुँचे तो सभी ने उनकी तारीफ़ की। कुछ दिन बाद प्रिंसिपल साहब ने एक समारोह का आयोजन किया जिसमें सरकार की तरफ़ से बच्चों को इनाम दिया गया।

नकटा बंदर

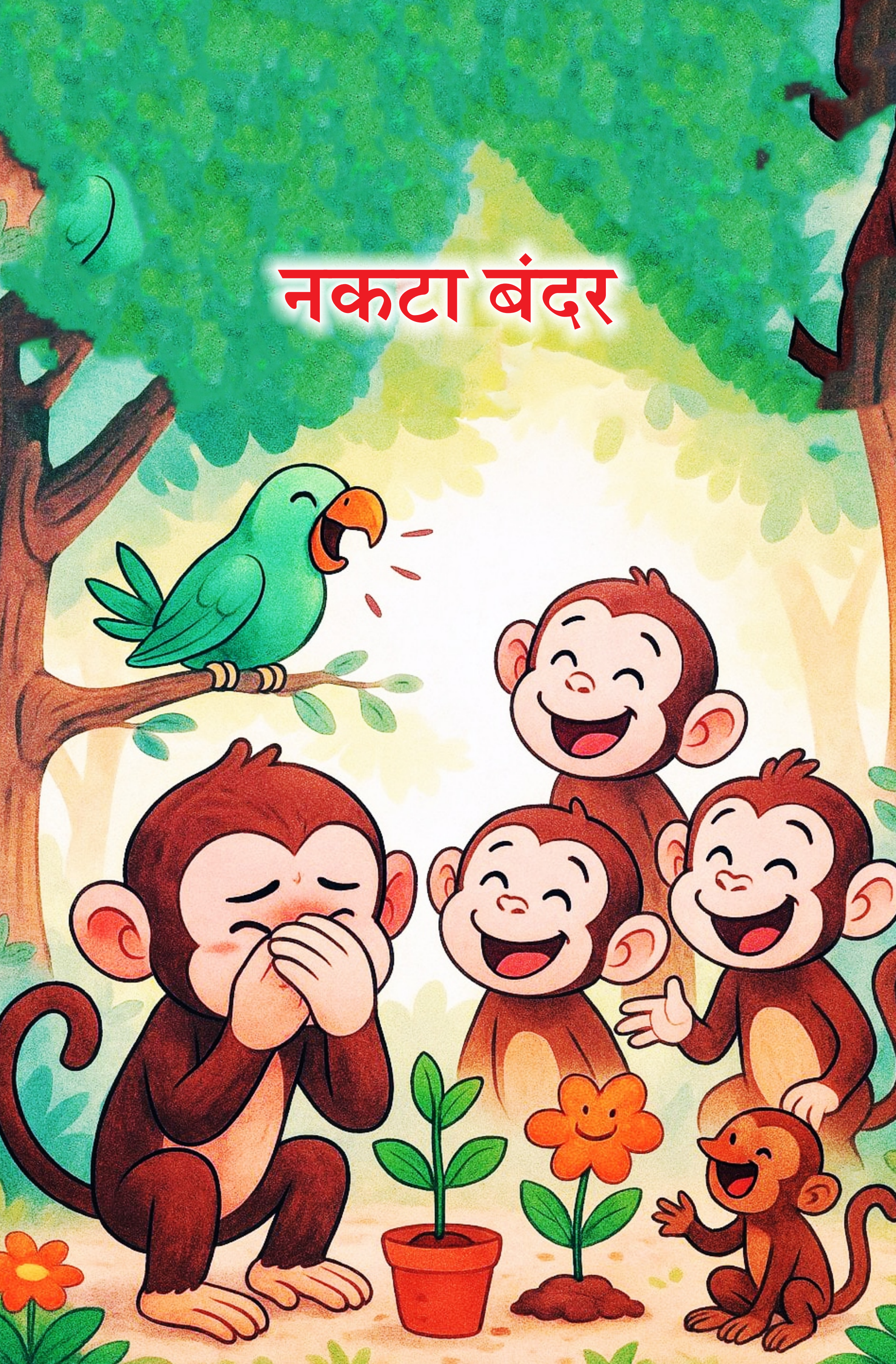

एक जंगल में बहुत सारे बंदर रहते थे। वह एक घना जंगल था जिसमें फलों के बहुत सारे पेड़ थे। उन पेड़ों से अंगूरों की बेलें लिपटी हुई थीं। जंगल में कई छोटे बड़े तालाब थे जिनमें साल भर पानी भरा रहता था।

बंदर अपना ज़्यादातर वक़्त पेड़ों पर गुज़ारते थे। वह कभी-कभी तालाब पर पानी पीने आते थे। उस जंगल में सभी जानवर और पक्षी मिलजुल कर रहते थे। कोई किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाता था।

बंदरों के सरदार का एक बेटा बहुत शैतान था। उसका नाम चिंकू था। चिंकू को रोज़ नई-नई शरारतें सूझती थीं। उसके साथी भी उसी की तरह शरारती थे। बंदरों के सरदार ने सभी बंदरों से कह रखा था कि किसी भी पक्षी के घोंसले के पास मत जाना और न ही उनके बच्चों को परेशान करना। बंदर अपने सरदार की बात मानते थे और कभी किसी पक्षी के घोंसले के क़रीब भी नहीं जाते थे।

एक बार चिंकू को नई शरारत सूझी। उसने अपने साथियों से कहा कि हम रोज़-रोज़ एक जैसे फल और सब्ज़ियाँ खाकर परेशान हो गए हैं। चलो कोई नई चीज़ खाते हैं। चिंकू के साथी बोले कि नई चीज़ क्या हो सकती है जो फलों और सब्ज़ियों से अलग हो। चिंकू ने कुछ सोचकर कहा: "थोड़ी दूर एक घना पेड़ है, उस पर बहुत

सारी चिड़ियाँ रहती हैं, क्यों न उनके अंडों पर हाथ साफ़ किया जाए।"

यह सुनकर उसके साथी डर गए। उन्होंने चिंकू को समझाते हुए कहा कि अगर सरदार को पता चल गया तो सख़्त सज़ा देंगे। न बाबा न, हम इस काम में तुम्हारा साथ नहीं दे सकते। चिंकू ने उन्हें समझाया कि सरदार मेरा बाप है। मेरे होते हुए वह कोई सख़्त सज़ा नहीं देंगे। सिर्फ़ डांटेंगे। हम चुपचाप उनकी बात सुन लेंगे और कह देंगे कि ग़लती हो गई। इसके बावजूद उसके साथी चिड़ियों के अंडे खाने को तैयार नहीं हुए।

एक दिन चिंकू चुपके से उस पेड़ पर पहुँच गया। दोपहर का वक़्त था और ज़्यादातर पक्षी दाना चुगने गए हुए थे। उसने जल्दी-जल्दी घोंसलों से अण्डे चुराए और खा गया। उसे अंडे बड़े मज़ेदार लगे।

शाम को चिड़ियाँ अपने घोंसले में दाना चुग कर वापस आईं तो उनके अंडे ग़ायब थे वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगीं कि उनके अंडे कहाँ गए। उन्हें परेशान देखकर चिंकू को बड़ा मज़ा आया और वह मुंह दबाकर ख़ूब हँसा।

कुछ दिन बाद वह दोबारा उसी पेड़ पर गया और अंडे तोड़कर खा गया। अभी तक उसकी शरारत का किसी को पता नहीं था।

जब पक्षियों को पता चला कि कोई उनके अंडे चुरा रहा है तो उन्होंने चोर को सबक़ सिखाने का फ़ैसला किया। पक्षियों का सरदार ग्रीनी तोता था। ग्रीनी ने कहा कि सभी पक्षी दाना चुगने नहीं जाएंगे। पेड़ पर कोई पक्षी छुप कर बैठ जाएगा और आसपास नज़र रखेगा।

उस दिन के बाद जब पक्षी दाने की तलाश में निकलते तो एक पक्षी पेड़ पर छुप कर बैठ जाता और चारों तरफ़ नज़र रखता।

एक दिन बराबर वाले बरगद के पेड़ पर कुछ हलचल हुई और चौकीदार पक्षी होशियार हो गया। उसने देखा कि चिंकू बंदर चुपके-चुपके उनके पेड़ पर आया और घोंसलों में अंडे तलाश करने लगा। उसे जहाँ भी अंडे मिले उन्हें खा गया।

जब शाम को पक्षी वापस आये तो चौकीदार पक्षी ने उन्हें सब बता दिया कि यहाँ से कुछ दूर एक पेड़ पर बंदर रहते हैं। उन्हीं में से एक छोटा सा बंदर सारे अंडे बर्बाद कर देता है।

ग्रीनी तोते ने यह सुनकर चिंकू को सबक़ सिखाने की ठानी। उसने काफ़ी सोच-विचार के बाद कहा "मैं उस बदमाश बंदर को सबक़ सिखाऊंगा।" वहां से थोड़ी दूर एक पेड़ पर छेद करके कठफोड़वे ने घोंसला बना रखा था। कठफोड़वे की चोंच बहुत तेज़ होती है। वह किसी भी चीज़ को कुछ ही सेकंड में तोड़फोड़ सकती है। ग्रीनी ने उसे बताया कि मैं बंदर को तुम्हारे घोंसले तक लेकर आऊंगा। जब वह घोंसले में झांके तो तुम झट से उस पर हमला कर देना।

एक दिन चिंकू एक पेड़ की मोटी डाल पर उल्टा लेटा आराम कर रहा था। ग्रीनी तोता उसके पास आया और इधर-उधर की बातें करने लगा। बातों-बातों में उसको बताया कि जंगल में एक ऐसी चिड़िया भी है जो एक बार में 15 से 20 अंडे देती है। क्या तुम उस चिड़िया को जानते हो? चिंकू ने पहली बार ऐसी चिड़िया के बारे में सुना था। उसे इस बारे में जानने की ख़्वाहिश हुई। ग्रीनी ने उसे उस पेड़ के बारे में बताया और यह भी बताया कि उसने कल ही बहुत सारे अंडे दिए हैं। अंडों के बारे में सुनकर चिंकू के मुंह में पानी आ गया। उसने सोचा एक ही बार में इतने अंडे मिल जाएँ तो मुझे दूसरे पेड़ों पर चोरों की तरह छुपकर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। ग्रीनी वहां से उड़ा और कठफोड़वे के पास जाकर उसे बताया कि शरारती बंदर आने वाला है। तुम तैयार रहना और ख़ुद छुपकर चिंकू का इंतजार करने लगा। थोड़ी देर में चिंकू उस पेड़ तक पहुंच गया। उसने इधर-उधर देखा। मैदान साफ़ था। वह किसी तरह कठफोड़वे के घोंसले तक पहुंचा। वहाँ एक छोटा सा छेद था। उसमें हाथ डालने से पहले वह अंदर झाँक कर देखना चाहता था कि कितने अंडे हैं। उसने छेद में झाँका तो अंदर अंधेरा था। उसे अंडों की गंध आ रही थी। उसने अपनी नाक उस छेद पर लगा दी ताकि अंडे चुराने से पहले उनकी गंध से मज़े ले सके। अचानक अंदर बैठे कठफोड़वे ने उसकी नाक पर ताबड़तोड़ हमले कर दिए। उसकी चोंच इतनी मज़बूत और तेज़ थी कि चिंकू की नाक कई जगह से कट गई। वह बुरी तरह

डर गया और दुम दबाकर भागा। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि अचानक यह क्या हुआ। उसकी नाक से ख़ून बह रहा था और बहुत दर्द था। वह डर के मारे अपने घर भी नहीं गया और तालाब पर जाकर अपना चेहरा देखा। नाक का अगला हिस्सा कट गया था और उसमें से ख़ून बह रहा था। उसने पानी से अपनी नाक धोई और वहीं बैठे-बैठे रोने लगा: "हाए! मेरी नाक कट गई"। अब मैं अपने घर वालों को क्या मुँह दिखाऊँगा। शाम को अंधेरा हो गया तो वह अपने पेड़ पर चला गया। उसने किसी से बात नहीं की। सारी रात नाक में दर्द रहा। न जाने कब उसकी आँख लग गई। सुबह उसकी माँ ने उसे हिलाया तो उसने आँखें खोलीं। झुण्ड के सारे बंदर उसके पास जमा थे और सभी पूछ रहे थे कि तुम्हारी नाक कैसे कटी। चिंकू की आँखों में आँसू आ गए और उसने अपनी नाक पर हाथ रख लिया।

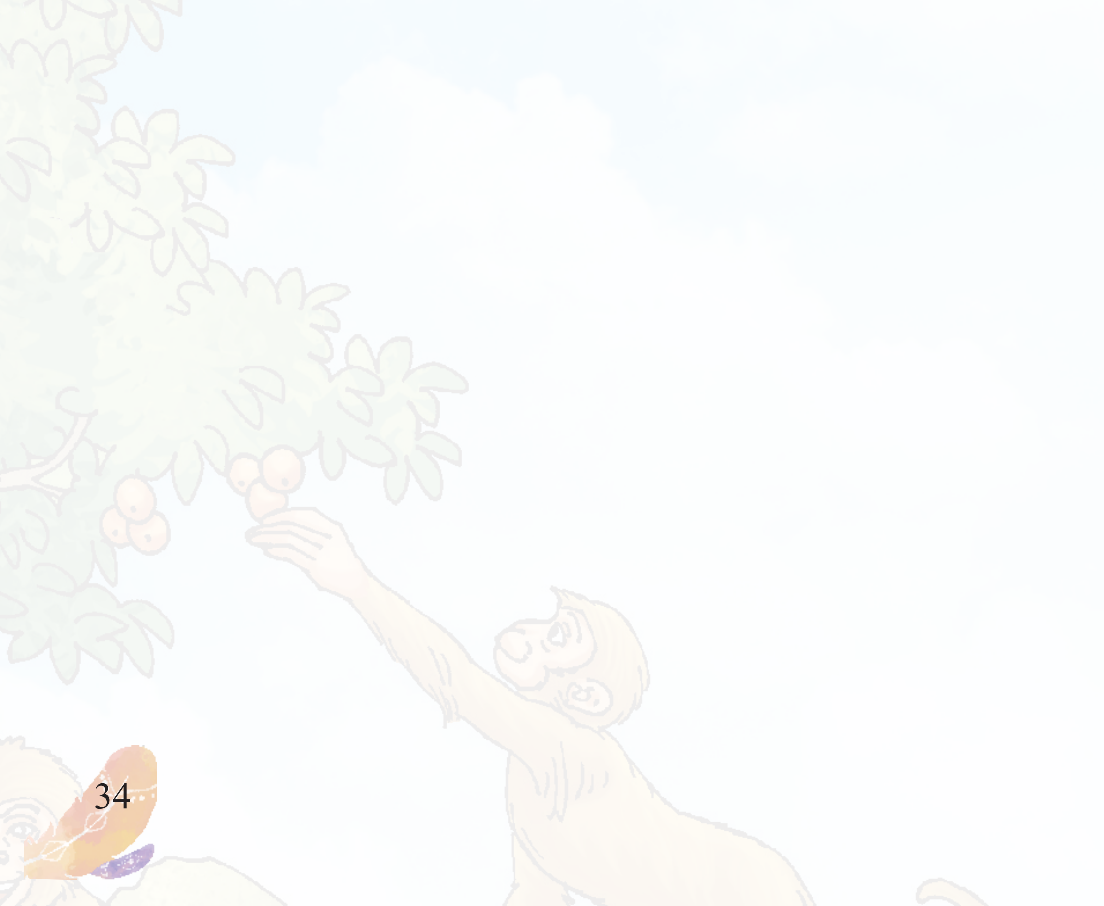

और छुक-छुक
सो गया...

★

भोपाल से दिल्ली का 10 घंटे का सफ़र तय करने के बाद छुक-छुक इंजन को काफ़ी थकान महसूस हो रही थी। फ़रीदाबाद पहुँच कर उसकी जान में जान आई। आधे घंटे बाद दिल्ली की सीमा शुरू हो जाती थी। थकान की वजह से उसने अपनी रफ़्तार भी कम कर दी थी। अब वह ऐसे मुसाफ़िर की तरह चल रहा है जिसे मंज़िल क़रीब होने का एहसास हिम्मत दे देता है और वह थके-थके क़दमों से बिना रुके मंज़िल की तरफ़ बढ़ता रहता है। फ़रीदाबाद की फ़ैक्ट्रियों से निकलते धुएँ में कई तरह की गंध मिली हुई थी। ज्यादातर फ़ैक्ट्रियां रेल की पटरियों के क़रीब थीं। उनमें से जले हुए तार की गंध आ रही थी। कहीं से तारकोल जैसी और कहीं तो इतनी ज़्यादा दुर्गंध कि वहां से जल्दी आगे बढ़ने का दिल चाहता लेकिन छुक-छुक धीरे-धीरे अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ रहा था। उसके पीछे 25 बोगियाँ जुड़ी हुई थीं। रेलगाड़ी की रफ़्तार (गति) कम होने पर काफ़ी संख्या में मुसाफ़िर रास्ते में उतर रहे थे। पटरी के किनारे रहने वाले बच्चे बड़े शौक़ से छुक-छुक को देख रहे थे। दरअसल छुक-छुक अपनी नस्ल का आखिरी इंजन था जो 25 साल से दिल्ली और भोपाल के बीच चल रहा था। उसने अब तक लाखों लोगों को इधर से उधर पहुंचाया था। कितने ऐसे लोग थे जो छुट्टी के दिनों को छोड़कर रोज़ाना उसके साथ लगी बोगियों में सफ़र करते थे। कुछ ने सिर्फ़ एक बार इसमें

सवारी की। काफ़ी लोगों की रोज़ी-रोटी इससे जुड़ी हुई थी। चाय वाले, समोसे वाले, भेलपुरी वाले, हाज़मे की गोलियां बेचने वाले, ताले वाले, खिलौने वाले और भिखारी इसमें सवार होकर रोज़ी-रोटी का बंदोबस्त करते थे। कितने ही लोग दिल्ली से सवार होकर नौकरी के लिए जाते थे और कितने ही भोपाल से चढ़कर ग्वालियर और झांसी तक काम करने के लिए आते थे। कितनी बारातें इसमें की गई थीं, कितने मरीज़ इसमें सवार होकर दिल्ली इलाज कराने आते थे। उसे इस बात का फ़ख़्र (गर्व) था कि वह 25 साल से अनगिनत लोगों की सेवा कर रहा था। वह अब बूढ़ा हो चुका था और आज उसके रिटायरमेंट का दिन था।

उसे वह दिन याद आया जब 25 साल पहले वह दूल्हे की तरह सज कर निज़ामुद्दीन रेलवे स्टेशन की पटरी पर खड़ा था। रेल मंत्री और बड़े-बड़े अधिकारियों ने झंडी दिखाकर उसे रवाना किया था। फ़ोटोग्राफ़रों ने उसके फ़ोटो खींचे थे। अख़बार और टेलीविज़न में उसकी तस्वीरें छपी थीं। कितना सुहाना सफ़र था वह। उसने बड़े गर्व से सीटी बजा कर अपने चलने का ऐलान किया था और धक-धक धक-धक धुआं छोड़ता हुआ वह अपनी मंज़िल की तरफ़ रवाना हुआ था। उसकी सीटी मीलों तक सुनाई देती थी। ड्राइवर उसे अपने परिवार का हिस्सा समझते थे। कोयला और पानी उसकी ख़ुराक थे। उसकी सांसों से निकलने वाली भाप उसकी शक्ति थी। वह ना दिन की परवाह करता था ना रात की, ना तूफ़ान उसे रोक सकते थे ना बारिश और ना बिजलियां, हड्डियां पिघला देने वाली गर्मी हो या ख़ून जमा देने वाली ठंड, वह मैदान में डटा रहता था। उसकी नज़र सिर्फ अपनी मंज़िल पर होती और यही धुन होती कि मुसाफ़िरों ने उस पर जो भरोसा किया है वह उस पर खरा उतरे।

25 साल में उसके कई दोस्त बने। कुछ पुराने इंजन थे जो उसके सामने रिटायर होकर या तो रेलवे म्यूज़ियम की शोभा बने या कबाड़ के क़ब्रिस्तान में दफ़न कर दिए गए। छुक-छुक भी म्यूज़ियम में रखा जाने वाला था। यहां वह लंबी नींद सोएगा और रेलवे के इतिहास में अपना नाम दर्ज करा लेगा। उसके ज़हन में वह तमाम रास्ते फ़िल्म की तरह चल रहे थे जहां-जहां वह गुज़रा था। मैदान, खेत,

जंगल, पहाड़ियाँ, नदियों पर बने पुल, नाले और टीले सब उसके दिमाग़ में सुरक्षित थे। उसने बड़ी संख्या में जंगलों को उजड़ते देखा था। कहीं क़स्बों को शहरों में बदलते देखा और गांवों को क़स्बों में। कितने खलिहान औद्योगिक क्षेत्रों में तब्दील होकर ऑक्सीजन के बदले कार्बन और दूसरी ज़हरीली गैसें उगलने लगे।

कई पहाड़ियों और चट्टानों के सीने चीर कर इंजीनियरों ने उसके लिए रास्ते बनाए, पुराने स्टेशन नए स्टेशनों में तब्दील हुए और कई नए स्टेशन वजूद (अस्तित्व) में आए। वह अपने 25 साल के सफ़र के बारे में सोचता हुआ दिल्ली में दाख़िल हुआ। तुग़लकाबाद का छोटा सा स्टेशन आ चुका था। उसने आख़िरी बार उसे देखा। आसपास बने मकानों और गलियों को वह अच्छी तरह पहचानता था। ना जाने आज उसकी ख़्वाहिश क्यों हो रही थी कि उसकी मंज़िल और दूर हो जाए और वह धीरे-धीरे वहाँ तक पहुंचे। वह उन जगहों को देर तक देखे जिन्हें वह 25 साल से देख रहा था। शहर में दाख़िल होते ही उसने आख़िरी सीटी मारी जो निज़ामुद्दीन रेलवे स्टेशन तक पहुंची। उसने अपनी रफ़्तार और कम कर दी थी। रोज़ाना की तरह मुसाफ़िर चलती रेलगाड़ी से उतरने लगे। पटरियां पार करने वाले साइकिलों से उतरकर उसके गुज़रने का इंतज़ार कर रहे थे। बच्चे आज भी उसे उसी दिलचस्पी से देख रहे थे जैसे 25 साल से देखते आ रहे थे। ओखला स्टेशन तक आते-आते उसकी रफ़्तार और कम हो गई। उसने दोनों तरफ़ बने ख़ूबसूरत घरों को देखा और 25 सालों में वहां जो भी तब्दीली आई थी उसके बारे में सोचा।

दिल्ली शहर इतनी तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी जी रहा था। रोज़ नए-नए तमाशे, नई परेशानियाँ, नई खोजें हो रही थीं। छुक-छुक की जगह दूसरा इलेक्ट्रिक इंजन उसी रास्ते पर चलने वाला था। जब छुक छुक आश्रम और भोगल के बीच पुल के नीचे से गुज़रा तो ड्राइवर ने उसकी भाप निकालनी शुरू कर दी। छुक-छुक, छुक-छुक छूउउउ... छूउउउ... यह आवाज़ बहुत अच्छी लग रही थी. छुक-छुक को अपनी आंखें भारी होती महसूस हो रही थीं। ना जाने क्यों आज उसे पहली बार अपने बूढ़ा होने का एहसास हो रहा था। वह मुश्किल से क़दम उठा रहा था। जहां आज

उसका सफ़र ख़त्म होना था और उसे दोबारा कलर करके सजा-धजाकर रेलवे म्यूज़ियम में जाना था। वहां बच्चे उसे देखने के लिए आएंगे। जिन्हें बताया जाएगा कि किसी ज़माने में रेल भाप के इंजन से चलती थी। वह निज़ामुद्दीन रेलवे स्टेशन पर पहुंचा तो उसकी आंखें भर आईं और उसने एक लंबी आह ली... छूउउउ... छूउउउ... और प्लेटफ़ार्म पर रुक कर नींद की परी की आग़ोश (गोद) में चला गया।

रशीद की ईमानदारी

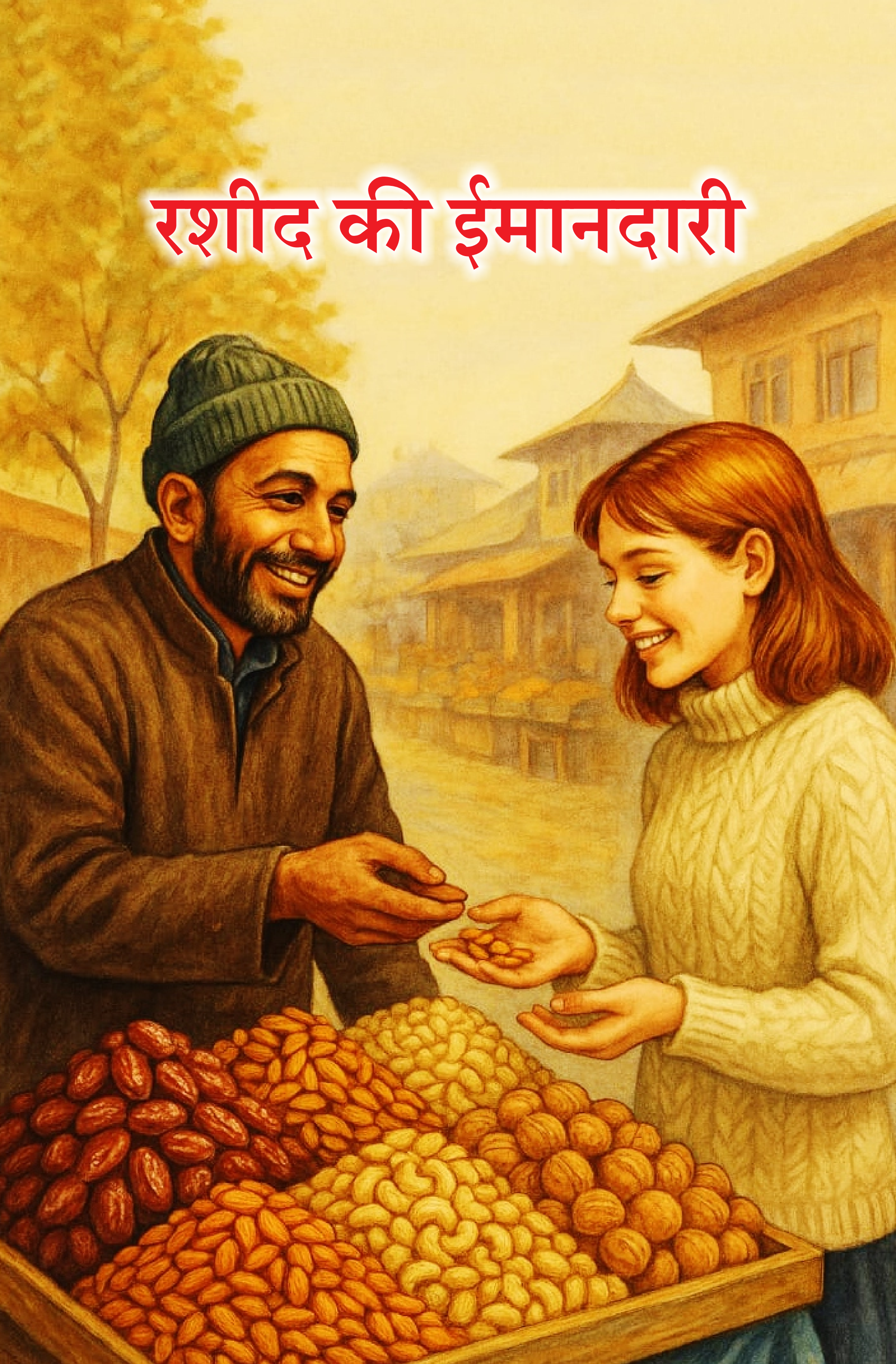

नवंबर में जैसे ही ठंड पड़नी शुरू होती है, उत्तर भारत के शहरों में बड़ी संख्या में कश्मीरी काम की तलाश में आने लगते हैं। उनमें से ज़्यादातर मज़दूरी का काम करते हैं। वह रिक्शा चलाते हैं, ट्रांस्पोर्ट गोदामों में ट्रकों पर माल चढ़ाने और उतारने का काम करते हैं। कुछ कश्मीरी शॉल और स्वेटर बेचते हैं। कुछ कई साल से सूखे मेवे सड़कों के किनारे ठेलों पर बेच रहे हैं। लोग कश्मीर के अख़रोट, सूखी ख़ुबानी, और बादाम पसंद करते हैं। आमतौर पर कश्मीरी जो मेवे बेचते हैं उनके दाम कम होते हैं और लोग दुकानों के बजाय उनसे ख़रीदना पसंद करते हैं।

पुरानी दिल्ली में कई जगह कश्मीरी मेवा फ़रोश नजर आते हैं। यह शहर के ख़ास बाज़ारों मटिया महल, चावड़ी बाज़ार, सूई वालान, बल्ली मारान, तुर्कमान गेट और सीताराम बाज़ार में खड़े होते हैं।

रशीद भी कई साल से दिल्ली में मेवे बेचने आता है। वह ज़्यादातर तुर्कमान गेट बाज़ार और सीताराम बाज़ार में ठेला लिए फिरता है। उसके कई ग्राहक तो सालों से उसे पहचानते हैं और वह उसी से मेवा ख़रीदना पसंद करते हैं।

उस रोज़ सर्दी बढ़ गई थी और रशीद शंकर गली के बाहर ठेला लिए खड़ा था। शाम के 6 बज चुके थे और कई सब्ज़ी व फल वाले भी आस-पास आकर खड़े हो

गए थे। आमतौर पर शाम को दफ़्तरों से आने वाले उन ठेले वालों से फल और सब्ज़ियाँ ख़रीद कर ले जाते हैं।

अब हम इस कहानी के दूसरे किरदार सुजाता की तरफ़ आते हैं।

सुजाता एक 22 साल की नौजवान लड़की है और वह गली शंकर वाली में रहती है। उसके पिता एक प्राइवेट फ़र्म में काम करते थे और पिछले साल रिटायर हो गए। उसकी माँ को अस्थमा है और वह घर पर ही रहती हैं। सुजाता का एक छोटा भाई है जो 12वीं कक्षा में पढ़ता है। सुजाता अकेली कमाने वाली है और उसकी सैलेरी पर ही उसका घर चलता है। वह एक मेहनती और सभ्य लड़की है। वह न तो किसी को तकलीफ़ में देख सकती है और न ही परेशान। वह दुख से पीड़ित लोगों की मदद करने को हर वक़्त तैयार रहती है। वह रोज़ाना क़रोल बाग़ स्थित एक प्राइवेट फ़र्म में काम करने जाती है और शाम को घर आती है।

आज सैलेरी का दिन था तो उसने पैसे अपने पर्स में संभाल कर रख लिए। वह मेट्रो से चावड़ी बाज़ार स्टेशन पर उतरी और तेज़-तेज़ क़दमों से शंकर गली की तरफ़ बढ़ने लगी। हालांकि स्टेशन से दस-दस रूपये में सवारी वाले रिक्शा चलते हैं लेकिन सुजाता दस रूपये भी बचाने की कोशिश करती है। जब वह गली के क़रीब आ गई तो उसकी नज़र रशीद के ठेले पर पड़ी। कश्मीर के मेवे देख कर उसके दिल में ख़्याल आया कि मम्मी के लिए अख़रोट और बादाम ले चलूँ। सर्दी में उन्हें फ़ायदा होगा। उसने रशीद से अख़रोट और बादाम के रेट पूछे और अपने पर्स से पैसे निकाल कर दिए और मेवों की थैली और अपना मफ़लर उठाकर गली में चली गई।

थोड़ी देर बाद आसमान पर बादल छा गए। बारिश की संभावना देख कर सभी लोगों ने अपने-अपने घर की राह ली क्योंकि सर्दी की बारिश में भीगना बहुत दुखदायी होता है। रशीद भी जल्दी-जल्दी बल्लीमारान की तरफ़ चला गया। सुजाता घर पहुँची तो उसकी मम्मी और पापा प्रतीक्षा कर रहे थे। मम्मी ने उसके लिए चाय बनाई थी। वह उनके हाथ में मेवों की थैली पकड़ाकर मुंह हाथ धोने

लगी। उसने कपड़े बदले और अपने माता-पिता के साथ चाय पीने लगी। माँ ने उससे कहा: "बेटी! यह बादाम और अख़रोट क्यों लाई है। तूने इतने पैसे ख़र्च कर डाले"।

सुजाता ने मुस्कुराते हुए कहा: "मम्मी आपकी सेहत से महंगे नहीं हैं। आपको फ़ायदा देंगे। इस मौसम में आपके शरीर को गर्मी की ज़रूरत है। इसलिए मैंने एक कश्मीरी भैया से अपनी मम्मी के लिए ख़रीदे हैं"।

सुजाता को ख़्याल आया कि सैलेरी के पैसे मम्मी को दे दूँ। उसने मेज़ पर पर्स तलाश किया तो पर्स वहाँ नहीं था। उसने जहाँ कपड़े टाँगे थे वहाँ भी नहीं मिला। उसका दिल धक से रह गया। पर्स कहाँ रह गया, यह सोचकर वह वाश बेसिन की तरफ़ भागी और उसके बाद सीढ़ियों पर देखा लेकिन पर्स नहीं मिला। उसके माता-पिता भी घबरा गए।

पापा ने पूछा: "आख़िरी बार तुमने कहाँ रखा था?"

सुजाता ने कहा: यहीं कहीं रखा था। मैंने सिर्फ़ वह कश्मीरी भैया के ठेले... वह इतना ही कह पाई और चप्पलें पहन कर बाहर भागी। उसके पापा भी उसके पीछे-पीछे थे। हल्की-हल्की बारिश शुरू हो चुकी थी और बाहर इक्का-दुक्का गाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। सभी ठेले वाले जा चुके थे।

सुजाता घबरा गई। गली के सामने एक दुकान खुली हुई थी। उसने वहाँ जाकर पूछा कि सब ठेले वाले कहाँ गए। दुकानदार ने बताया कि बादल छाते ही सब चले गए।

ओ माई गॉड! यह कहते हुए सुजाता ने अपना सिर पकड़ लिया।

उसके पापा बोले: "अगर तुम्हारा पर्स कश्मीरी को मिल गया होगा तो उसकी तो लॉटरी निकल गई होगी। मुझे नहीं लगता कि वह तुम्हारा पर्स वापस करेगा, या कल यहाँ ठेला लगाएगा..."

लेकिन सुजाता का दिल कह रहा था कि अगर कश्मीरी मेवा वाले के पास पर्स होगा तो वह ज़रूर वापस कर देगा। वह सूरत से एक सीधा-सादा और ईमानदार

इंसान लग रहा था।

वह थके-थके क़दमों से घर वापस आ गई। जब उसकी मम्मी ने बाप-बेटी को ख़ाली हाथ घर आते देखा तो वह रोने लगीं। वह कह रही थीं अब पूरे महीने का ख़र्च कैसे चलेगा। ऐसा लगता था कि सुजाता का पर्स उस परिवार की ख़ुशियाँ अपने साथ ले गया।

सुजाता के पिता ने थाने चल कर कश्मीरी मेवा वाले के ख़िलाफ़ रिपोर्ट दर्ज कराने को कहा लेकिन सुजाता ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। हालांकि उसका दिल रो रहा था लेकिन उसने अपने आँसुओं को रोका हुआ था। वह एक साहसी लड़की थी।

उसने अपने माता-पिता को समझाया कि अगर हमारे नसीब में भगवान ने नुकसान नहीं लिखा होगा तो हमारे पैसे वापस मिल जाऐंगे। कल सुबह तक इंतिज़ार करते हैं।

बारिश कुछ तेज़ हो गई थी। उसी के साथ ठण्ड भी बढ़ गई थी। सुजाता के घर में मातम छाया हुआ था। सबको यही चिंता थी कि घर का ख़र्चा कैसे चलेगा। पर्स खोने के ग़म में सुजाता ने खाना भी नहीं खाया।

रात को 9 बज रहे थे कि अचानक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। सुजाता के घर वालों ने सोचा इतनी रात और बारिश में कौन आया होगा। सुजाता के पापा ने दरवाज़ा खोला तो उनके सामने रशीद खड़ा हुआ था। वह बारिश में भीगा हुआ था और उसकी टोपी से पानी की बूंदें टपक रही थीं।

सुजाता के पापा एक अजनबी मुसलमान को अपने सामने देख कर घबरा गए और बोले, कौन हो तुम?

रशीद ने झिझकते हुए पूछा: "क्या आपकी ही बिटिया ने आज अख़रोट और बादाम ख़रीदे थे?" इससे पहले कि उसके पिता कुछ कहते, सुजाता रशीद की आवाज़ पहचान गई और दौड़ती हुई आई। "हाँ! मैंने ही ख़रीदे थे।"

रशीद ने उसका पर्स आगे बढ़ाते हुए कहा: “बहन! आपका पर्स मेरे ठेले पर रह गया था। जब मैं घर पहुँचा और ठेले से सामान उतारने लगा तो मुझे आपका पर्स नज़र आया।

सुजाता ने अपने पिता की तरफ़ सवालिया नज़रों से देखा। उन्होंने नज़रें झुका लीं। तभी सुजाता की मम्मी बोलीं: “बेटे! तुम भीग गए हो। कहीं ठण्ड न लग जाए। आओ! अंदर आ जाओ।” रशीद अंदर आते हुए झिझक रहा था। सुजाता ने उसका बाज़ू पकड़ा और अंदर ले आई। सुजाता ने तौलिया से उसका सिर साफ़ किया और उससे पूछा: “तुम्हें पता है इस पर्स में कितने रूपये हैं। पूरे 20 हज़ार रूपये हैं।”

रशीद ने मुस्कुराते हुए कहा: “रुपये 20 हज़ार हों या 20 लाख, आपके हैं। मैं क्यों लूंगा।”

सुजाता के पिता ने रशीद के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा: “बेटा! अंजाने में मैं तुम्हें क्या-क्या कह गया। मैं तो पुलिस में रिपोर्ट कराने वाला था लेकिन मेरी बेटी ने मना कर दिया।”

“तुम्हें मेरे घर का पता कैसे मिला?” सुजाता ने पूछा।

“आपको मैंने इस गली में दाख़िल होते देख लिया था। जब मैं पर्स लेकर आया तो कई लोगों से पूछा कि इस गली से कोई लड़की ऑफ़िस काम करने जाती है। लोगों ने उन लड़कियों के बारे में बताया जो ऑफ़िस में काम करती हैं। मैं पहले घर गया तो वह नहीं थी। फिर मैं आपके घर आया।”

सुजाता के पापा ने रशीद को कुछ पैसे देने चाहे लेकिन उसने इंकार कर दिया। उसने कहा: “मुझे अपने घर जाना है। मेरे साथियों ने खाना बना लिया होगा और वह मेरा इंतिज़ार कर रहे होंगे।”

सुजाता के मम्मी पापा ने उसे छाता देते हुए कहा: “तुम्हारी ईमानदारी ने हमारा दिल जीत लिया। तुम एक बेहतरीन इंसान हो। तुम हमारे बेटे की तरह हो। समझो

आज से तुम्हारे एक मम्मी-पापा दिल्ली में रहते हैं। जब दिल चाहे हमारे घर आ जाना। सुजाता बोली: ''मम्मी-पापा के साथ एक बहन भी मिल गई।''

रशीद की ईमानदारी ने उसे परदेस में वह चीज़ दिला दी थी जिसका दुनिया में कोई दाम नहीं। माँ-बाप और एक बहन का प्यार।

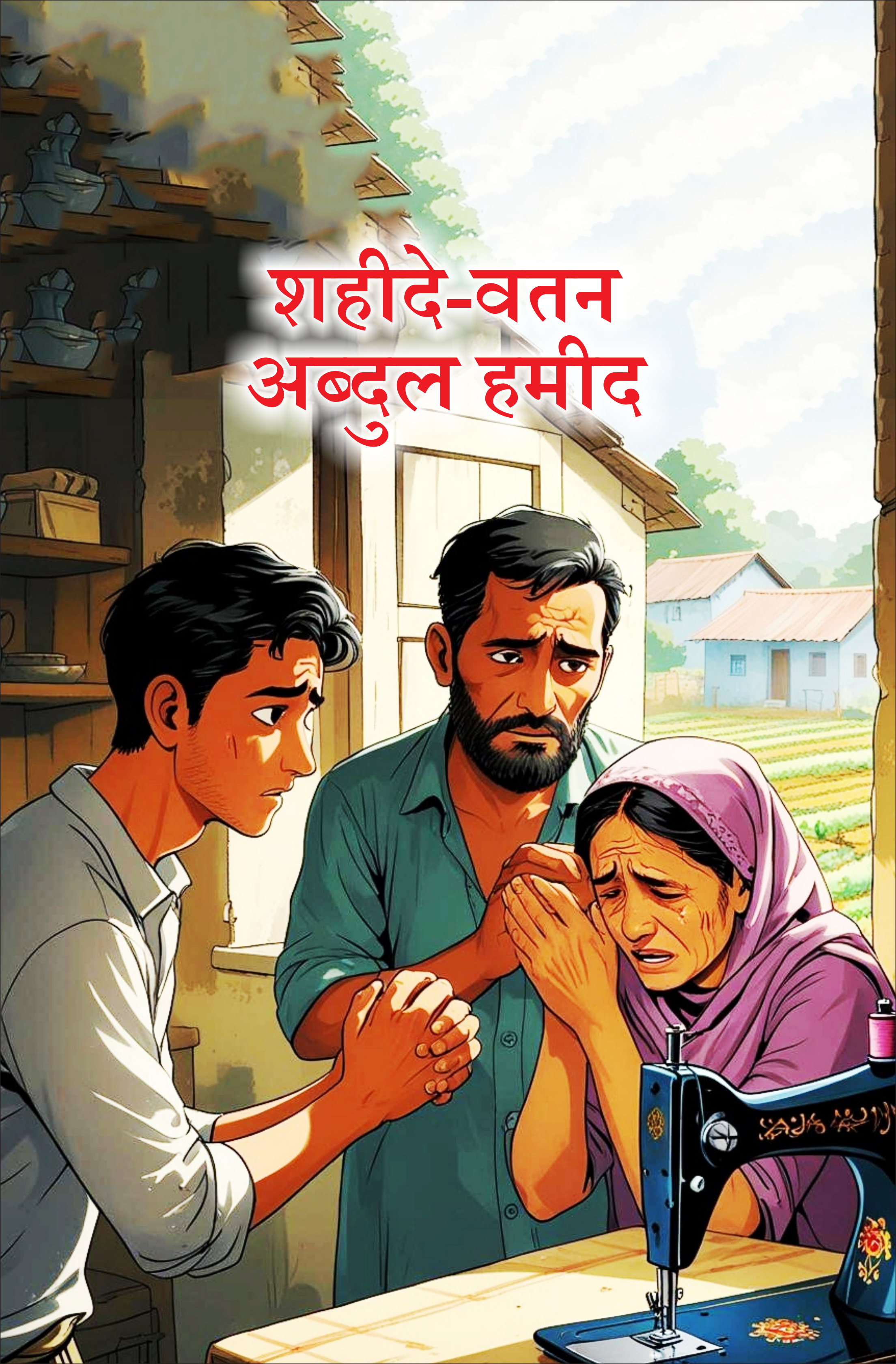
शहीदे-वतन
अब्दुल हमीद

धामपुर के गाँव में एक छोटा सा स्कूल था। वहाँ मास्टर अतीक़ बच्चों को पढ़ाने के साथ-साथ देशभक्ति की कहानियाँ सुनाया करते थे। 1940 का ज़माना था और हिंदुस्तान पर अंग्रेज़ राज कर रहे थे। मास्टर अतीक़ जब भी ख़ाली होते तो बच्चे उनसे किसी बहादुर या शहीद के बारे में कहानी सुनाने को कहते। मास्टर साहब भी कभी टीपू सुल्तान, कभी रानी लक्ष्मीबाई और कभी 1857 के शहीदों के क़िस्से सुनाते। क्लास में ख़ामोशी छा जाती और बच्चे बड़ी दिलचस्पी से उनकी बातें सुनते।

मध्यावकाश के वक़्त बच्चों का सबसे पसंदीदा खेल लड़ाई-लड़ाई होता। कोई एक बच्चा और उसके साथी स्वतंत्रता सेनानी बनते और कुछ बच्चे सिपाही बनते। आज हमीदवा (अब्दुल हमीद) की टीपू सुल्तान बनने की बारी थी। बच्चों ने अपनी तख़्तियों को तलवार बना रखा था तो कुछ बच्चे अपने बस्ते को ढाल के तौर पर इस्तेमाल कर रहे थे। हमीदवा का पसंदीदा खेल सिपाही बनना था। उसके वालिद उस्मान एक दर्ज़ी थे। घर के एक हिस्से में उनकी दुकान थी वहीं वह कपड़े सीते थे। उनकी ख़्वाहिश थी कि उनका बेटा भी ख़ानदानी काम सीख कर घर चलाए। वह दौर ही ऐसा था। आमतौर पर लड़के अपने पिता के काम को सीखते थे और यह सदियों से चला आ रहा था। अब्दुल हमीद जब 20 साल के हुए तो

उनके बचपन का दोस्त कलुआ फ़ौज में भरती हो गया। छुट्टियों में वह गाँव आया तो सबसे पहले अपने दोस्त हमीदवा से मिलने उसकी दुकान पर गया। हमीदवा उस वक़्त कपड़े सी रहा था और उसके वालिद किसी काम से बाहर गए हुए थे। कलुआ को फ़ौज की वर्दी में देख कर हमीदवा हैरान रह गया। फ़ौज की वर्दी कलुआ पर बहुत अच्छी लग रही थी। यह बात 1953 की है। दोनों दोस्त बचपन की बातें करने लगे। दोनों ने ही लड़ाई-लड़ाई खेल का ज़िक्र किया और बहुत हंसे।

न जाने क्यों कलुआ से मुलाक़ात करके अब्दुल हमीद के दिल में भी ख़्वाहिश पैदा हुई कि वह भी फ़ौज में शामिल हों। उनका दिल बार-बार कहता कि वह किसी बड़े काम को करने के लिए पैदा हुए हैं।

जब अब्दुल हमीद ने अपने वालिद (पिता) से फ़ौज में भरती होने का ज़िक्र किया तो उन्होंने साफ़ मना कर दिया। वह अब्दुल हमीद से बहुत प्यार करते थे। वह उन्हें अपनी नज़रों से दूर नहीं करना चाहते थे। अब्दुल हमीद की माँ को भी पता चला तो वह रोने लगीं। उन्होंने उन्हें बहुत समझाया कि हमीदवा हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकते, तुम अच्छा ख़ासा सिलाई का काम जानते हो, अपना घर है, ज़मीन है, गाँव में तुम्हारे दोस्त हैं, फिर क्यों हमसे दूर जाना चाहते हो?

माँ-बाप ने यही सोचा कि अब्दुल हमीद की शादी कर दी जाए। बहू घर आ जाएगी तो बेटा फ़ौज में भरती होने का इरादा छोड़ देगा। उन्होंने गाँव की एक ख़ूबसूरत और नेक लड़की से उसकी शादी कर दी। अब्दुल हमीद शादी करके बहुत ख़ुश थे। इसके बावजूद फ़ौज में भरती होने की ख़्वाहिश कम नहीं होती थी। एक दिन वह घर वालों को बिना बताए फ़ौज में भरती हो गये और उनकी ट्रेनिंग शुरू हो गई। वह एक देशभक्त और बहादुर सिपाही थे। जल्द ही उन्हें हवलदार के पद पर तैनात कर दिया गया।

सन् 1962 में चीन ने मादरे-वतन हिंदुस्तान पर हमला कर दिया। अब्दुल हमीद की फ़ौजी टुकड़ी को वतन की सुरक्षा करने के लिए भेजा गया। चीन के पास बहुत बड़ी फ़ौज थी। उसका अब्दुल हमीद और उनके साथियों ने डट कर मुक़ाबला किया

लेकिन एक-एक करके उनके साथी मादरे-वतन के लिए शहीद होते गए। अब्दुल हमीद कई हफ़्तों का सफ़र करके मुश्किल रास्तों से होते हुए हिंदुस्तान की एक चौकी तक पहुंचे। भूख, प्यास और ज़ख़्मों से वह चूर थे। इसके बावजूद उनके हौसले में कोई कमी नहीं आई। इलाज के बाद वह स्वस्थ हो गए और कुछ दिन की छुट्टी लेकर घर आ गए।

10 सितम्बर 1965 को पाकिस्तान ने अमरीकी हथियारों और सपोर्ट से भारत पर हमला कर दिया। यह अचानक से किया गया ज़बरदस्त हमला था। देश के बहादुर सिपाही अपने देश की सुरक्षा के लिए फ़ौरन हरकत में आ गए। इस बार अब्दुल हमीद की टुकड़ी को पंजाब की सरहद पर भेजा गया। पाकिस्तान के पास अमेरिका में बने अत्याधुनिक पेटन टैंक थे और वह गोलाबारी करते हुए हिंदुस्तान की सरहद की तरफ़ बढ़ रहे थे। जिस जगह पर अब्दुल हमीद अपनी टुकड़ी के साथ तैनात थे वहाँ भारी शस्त्र नहीं थे। हिंदुस्तानी सिपाही, बंदूक़ों, हथगोलों और रिकॉलिस गन से मुक़ाबला कर रहे थे। (रिकॉलिस गन को जीप पर फिट किया जाता है और इससे कम दूरी पर गोले दाग़े जाते हैं।)

अब्दुल हमीद ने जब पाकिस्तानी टैंकों को भारत की तरफ़ बढ़ते देखा तो उन्होंने अपने चार पाँच साथियों के साथ मिलकर उन्हें रोकने की कोशिश की और रिकॉलिस गन से टैंकों पर निशाना लगाकर हमला करने लगे। उनका हौसला और शहादत का जज़्बा देखने लायक़ था। उन्होंने हैरतअंगेज तौर पर 7 पाकिस्तानी टैंक तबाह कर दिए। दुश्मन का बहुत बड़ा नुक़सान था। यह बात किसी चमत्कार से कम न थी कि इतने मज़बूत टैंक को रिकॉलिस गन से तबाह कर दिया गया।

एक-एक करके अब्दुल हमीद के साथी शहीद होते गए और इस बहादुर सपूत ने अकेले ही पाकिस्तानी टैंकों पर बमबारी जारी रखी। आख़िरकार टैंक से निकला एक गोला अब्दुल हमीद की जीप से आ टकराया और मादरे-हिंद का यह महान सपूत 10 सितम्बर 1965 को शहीद हो गया। उनकी बहादुरी ने पाकिस्तानी फ़ौज को आगे बढ़ने से रोक दिया और उसे वापस जाना पड़ा। उनकी शहादत के कुछ

दिन बाद ही सरकार ने उनको परमवीर चक्र से नवाज़ा जो उनकी बेगम रसूलन बी ने लिया। पंजाब के चीमा गाँव में शहीद का स्मारक स्थापित किया गया और वहाँ पाकिस्तान का एक तबाह टैंक भी रखा गया। इसके अलावा ग़ाज़ीपुर में भी शहीदे-वतन अब्दुल हमीद का स्मारक बनाया गया। अब्दुल हमीद ने अपनी हिम्मत और हौसले के दम पर अपना नाम हिंदुस्तान के महान सिपाहियों में दर्ज करा लिया।

वतन की ख़ातिर

हिंदुस्तान के स्वतंत्रता संग्राम में नौजवान इंक़लाबियों के शामिल होने से देश भर में नौजवानों में नया जोश भर गया था। चंद्रशेखर आज़ाद, अश्फ़ाक़ुल्लाह ख़ान, रामप्रसाद बिस्मिल और भगतसिंह नौजवानों के लीडर बन गए थे। इन नौजवानों ने अंग्रेज़ों के हाथों देश पर होने वाले ज़ुल्म और सख़्तियों का मुक़ाबला करने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देने का फ़ैसला किया और सिर से कफ़न बाँधकर मैदान में उतर आए। नौजवान इंक़लाबियों ने पेशावर से लेकर बंगाल तक अंग्रेज़ सामराज की नाक में दम कर दिया था।

पंजाब में इंक़लाब की आग बुझाने के लिए एक बेहद ज़ालिम अंग्रेज़ ज्योफ्रे डे को गवर्नर बनाया गया। जिसने स्वतंत्रता आंदोलन को कुचलने और स्वतंत्रता सेनानियों को ख़त्म करने का काम शुरू कर दिया। पंजाब में जहाँ भी ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ प्रदर्शन होते और जो लोग उनमें शामिल होते उन्हें जुल्म-ओ-सितम का निशाना बनाया जाता।

भगत सिंह और उनके साथियों को जिस तरह अंग्रेज़ों ने फाँसी दी उससे पूरे मुल्क में ग़म व ग़ुस्से की लहर दौड़ गई। एक नौजवान जिसका नाम हरि किशन सरहदी था वह एक माहिर निशानेबाज़ गौरव दास मल का बेटा था। जब वह 17 साल का

था तो उसने 1925 में काकोरी कांड के बारे में सुना। हालाँकि यह उम्र खेलने-कूदने की होती है लेकिन हरि किशन सरहदी ने यही सोचा कि जब नौजवान लोग ब्रिटिश हुकूमत से टकरा सकते हैं तो हम क्यों ऐसा नहीं कर सकते। उसका ख़्याल था कि देश को अंग्रेज़ों से लड़कर ही आज़ाद कराया जा सकता है। इसलिए कम उम्र होने के बावजूद इंक़लाबी ग्रुप 'नौजवान भारत सभा' का सदस्य बन गया। इस संगठन का काम ख़ुफ़िया तौर पर ऐसे नौजवानों को इकट्ठा करके अंग्रज़ों से मुक़ाबला करना था जो ब्रिटिश हुकूमत से टकराने का जज़्बा रखते थे। हरि किशन सरहदी और उनके मित्रों को भगत सिंह और उनके साथियों की शहादत पर बड़ा गुस्सा था और उनके दिलों में बदले की आग सुलग रही थी।

हरि किशन ने किसी तरह पैसे जमा करके एक रिवाल्वर और गोलियाँ ख़रीदीं और अपने पिता से निशानेबाज़ी की ट्रेनिंग ली। उनके पिता ने कुछ ही दिनों में उन्हें अच्छा निशानेबाज़ बना दिया। उन्होंने अपने पिता गौरवदास मल को बता दिया कि वह किस लिए निशानेबाज़ी सीख रहे हैं।

23 दिसम्बर 1930 को पंजाब यूनिवर्सिटी में दीक्षांत समारोह था जिसमें गवर्नर ज्योफ़्रे डे विशेष अतिथि के तौर पर भाग लेने वाला था। इसलिए इंक़लाबी नौजवानों ने इस मौक़े को बेहतर जाना और उसे क़त्ल करने का प्लान बनाया। इस काम को करने का ज़िम्मा ख़ुद नौजवान हरि किशन सरहदी ने लिया। उन्होंने यूनिवर्सिटी छात्र जैसा भेस बनाया और एक डिक्शनरी को अंदर से काट कर उसमें पिस्तौल रख ली। जिस जगह प्रोग्राम था वहाँ चारों तरफ़ सख़्त सिक्योरिटी थी लेकिन उन्होंने किसी को शक भी नहीं होने दिया और वह दीक्षांत समारोह हॉल में प्रवेश कर गए और प्रोग्राम ख़त्म होने का इंतिज़ार करने लगे। जब प्रोग्राम ख़त्म हुआ और गवर्नर चलने के लिए उठा तो उन्होंने आगे बढ़ कर पिस्तौल निकाली और एक कुर्सी पर चढ़ कर उस पर गोली चला दी। पहली गोली गवर्नर के हाथ में जा घुसी और दूसरी उसकी कमर को छीलती हुई निकल गई। हॉल में अफ़रा-तफ़री का माहौल था। सब अपनी-अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। उस प्रोग्राम में डॉ. राधाकृष्णन भी आए हुए थे। वह गवर्नर ज्योफ़्रे डे को बचाने

के लिए उसके सामने आ गए। हरि किशन ने उन पर गोली नहीं चलाई। वह बराबर इंक़लाब ज़िंदाबाद के नारे लगा रहे थे। हरि किशन हॉल से बाहर की तरफ़ दौड़े और जहाँ गाड़ियाँ खड़ी थीं उस तरफ़ बढ़े तभी दरोग़ा चानन सिंह ने उन्हें पीछे से आकर दबोच लिया लेकिन उन्होंने ख़ुद को छुड़ा लिया और उसे वहीं ढेर कर दिया। सामने से एक और सिपाही बुद्ध सिंह आया और उसने उन पर हमला किया लेकिन वह ख़ुद को बचाने में कामयाब हो गए और एक गाड़ी के पीछे जाकर अपनी रिवाल्वर में गोलियाँ भरने लगे। वहाँ कई पुलिस वाले पहुँच गए और उन्हें घेर कर रिवाल्वर छीन ली। उन्हें गिरफ़्तार करके लाहौर जेल में डाल दिया गया जो उस ज़माने में सबसे ज़्यादा ख़तरनाक जेल मानी जाती थी और वहाँ स्वतंत्रता सेनानियों को सख़्त सज़ाएँ दी जाती थीं।

हरि किशन सरहदी को वहाँ बुरी तरह टॉर्चर किया गया। कड़ाके की ठण्ड में उन्हें बर्फ़ की सिल्लियों पर लिटाया गया और इस साज़िश में शामिल दूसरे इंक़लाबियों के बारे में पूछा गया लेकिन वह इंक़लाब ज़िंदाबाद के नारे लगाते रहे।

26 जनवरी 1931 को अदालत ने उन्हें सज़ा-ए-मौत सुनाई। जब वह लाहौर की मियांवाली जेल में बंद थे तो उनकी दादी उनसे मिलने आईं। उन्होंने पोते से कहा: "बेटा! पूरी शान से फाँसी के तख़्ते पर चढ़ना। यही इंक़लाबियों की शादी होती है"। सरहदी ने मुस्कुराते हुए कहा: "दादी! मैं शेरनी का पोता हूँ, वतन की ख़ातिर हँसते हुए जान दूँगा"।

उन्होंने अपने पिता को बताया कि जब मैंने ज्योफ़्रे डे को निशाने पर लिया तो कुर्सी हिल गई थी इसलिए निशाना चूक गया।

9 जून 1931 की सुबह 6 बजे लाहौर की मियांवाली जेल में इस इंक़लाबी ने स्नान किया, फाँसी का लिबास पहना और 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' के नारे लगाता हुआ फाँसी के तख़्ते पर चढ़ गया। जल्लाद ने आख़िरी ख़्वाहिश पूछी तो उन्होंने कहा: "मेरी लाश मेरे ख़ानदान वालों के सुपुर्द कर दी जाए"। उसके बाद वह फाँसी के फंदे पर झूल गए लेकिन अंग्रेज़ों ने उनकी लाश उनके घर वालों को देने से इंकार

कर दिया और उसे जेल में ही जला दिया।

उनके पिता गौरवदास मल को भी गिरफ़्तार कर लिया गया और जेल में उन पर अत्याचार किया गया। जेल की सख़्तियों और अत्याचार के कारण वह भी कुछ महीनों बाद जेल में ही शहीद हो गए।

इस तरह बाप-बेटे ने वतन की ख़ातिर अपनी जानें क़ुर्बान कर दीं।

★

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन एक नई पहल

हिंदुस्तान जन्नत निशान, जो मज़हबी, भाषायी एवं सांस्कृतिक विविधताओं का देश है और 'अनेकता में एकता' से जिसकी पहचान होती है। इस महान देश का इतिहास मानव-प्रेम की मिसालों से भरा पड़ा है। जिसमें शक्ति और शान्ति भक्तों के गीतों का नतीजा है और हिंदुस्तान हमेशा इस बात का गवाह रहा है कि धरती के बासियों की मुक्ती प्रीत में है।

पता नहीं दुनिया को किसकी बुरी नज़र लग गई कि सामाजिक निकटता दूरियों में बदलने लगी हैं। सच्चाई तो यही है कि इस देश की अधिकांश लोग आज भी इस अलगाव तथा विभाजन का हिस्सा बनने के लिए तैयार नहीं है, लेकिन बहुसंख्यक अगर ख़ामोश रहते हैं तो उसका अस्तित्व गहरे अन्धकार के गर्त में समा जाता है। वर्तमान में अधिकांश लोग समाज एवं मानवता के दुखों का निवारण करने के बजाय केवल और केवल अपने आप में व्यस्त हैं। वह मनुष्य जो कभी जनसाधारण की आकांक्षाओं का स्वर हुआ करता था आज अपने आप तक ही सीमित होकर रह गया है। इन हालात में हाथ में हाथ धरे बैठा नहीं रहा जा सकता और इसलिए ज़रूरी है कि एक बार उन सभी प्रतीकों को फिर से ज़िंदा किया जाए जो 'मुहब्बतों की गाथा' और 'प्रेम के ढाई अक्षर' से एक दूसरे को जोड़े रहे जिनके नज़दीक मादरे-वतन, यहाँ जन्म लेने और बसने वाले, इसकी

दरियाओं का पानी पीने वाले, इसके खेतों में पैदा होने वाले अन्न से अपनी भूख मिटाने वालों को फिर इस बात का एहसास दिलाया जाए कि उनका मज़हब, ज़बान और इलाक़ा कुछ भी हो सकता है लेकिन माँ और माटी से उनका रिश्ता इस दुनिया के पैदा करने वाले और चलाने वाले रब की मर्ज़ी का नतीजा है और जिसमें रब राज़ी उसमें सब राज़ी रहें तो ही बेहतरी और भलाई है।

हिंदुस्तान में एक दूसरे को जोड़ने वालों का यदि उल्लेख किया जाए तो उनके नाम और काम गिनाने में कोई देर न लगेगी लेकिन अगर एक दूसरे को एक दूसरे से अलग करने वालों और बाँटने वालों के नाम पूछे जाएँ तो उसे उनके नाम याद करने और बताने में बड़ी मुश्किल आएगी।

इन सबके बावजूद आज फिर यह दूरियाँ, यह टकराव और हिंसा बार-बार क्यों देखने को मिल रही है। इसका सीधा-साधा जवाब यही है कि हमने उन्हें भुला दिया है जिन्हें हमें याद रखना चाहिए था। देवी-देवताओं, पैग़ंबरों, पीरों और ऋषियों-मुनियों के त्याग, तपस्या, समर्पण और सेवाभाव को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। उनकी शिक्षाओं तथा उनके उपदेशों को एक बार फिर लोगों तक पहुँचाया जाना चाहिए।

यही वह सोच और फ़िक्रमंदी है जिसके तहत 'ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन' की स्थापना की गई है। हज़रत अमीर ख़ुसरो मध्यकालीन भारत के एक ऐसे लोकप्रिय, मनमोहक एवं सर्वव्यापी व्यक्तित्व हैं, जिन्हें सदियाँ गुजरने के बाद भी याद रखा गया और हमेशा याद रखा जाएगा। वह सूफ़ी भी थे और सिपाही भी, कवि भी थे और संगीतकार भी, इतिहासकार भी थे और इतिहास बनाने वाले भी। उनके व्यक्तित्व की सार्वभौमिकता और विशिष्टता ने उन्हें न केवल विभिन्न गुणों का वाहक बनाया था बल्कि बहुआयामी विशेषताओं से परिपूर्ण किया था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास के बड़े-बड़े नामियों के निशान मिट गए लेकिन हज़रत अमीर ख़ुसरो आज भी न सिर्फ़ हमारी तारीख़ का एक हिस्सा हैं बल्कि हर इंसान के दिल व दिमाग़ में रचे बसे हैं। वे लोगों के दिलों में इस प्रकार रचे-बसे हैं

कि ख़ुशी के लम्हे हों या दुख के पल, हज़रत अमीर ख़ुसरो का नाम तथा उनकी रचनाएँ सदैव अपनी प्रासंगिकता के साथ हमारे साथ हैं।

इस गुत्थी को तो मनोवैज्ञानिक ही सुलझा सकते हैं कि हज़रत अमीर ख़ुसरो ने अपनी विभिन्न दरबारी एवं ख़ानक़ाही गतिविधियों के बीच किस प्रकार संतुलन स्थापित किया। यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ख़ुसरो ने यह संतुलन अपने व्यक्तित्व के खरेपन के साथ स्थापित किया था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका हर जुड़ाव और हर किरदार खुली किताब की तरह सब पर ज़ाहिर था और इस खुलेपन के बावजूद ज़िंदगी भर कामयाब रहे। सच्चाई से भरपूर चिंतन, अमीर ख़ुसरो के व्यक्तित्व को हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस भारतीय तुर्क का देश-प्रेम न केवल मिसाली है, बल्कि क़ाबिले-रश्क भी है। ख़ुसरो के नज़दीक भारत की धरती अदन की जन्नत है। यहाँ के लोग प्रत्येक रंग व रूप में उन्हें प्रिय है। यहाँ के दरबारों के समक्ष ईरान, तूरान और ख़ुरासान के दरबार फीके दिखाई देते हैं। यहाँ के लोग कृषि, उद्योग, व्यापार के साथ-साथ विज्ञान एवं कला के प्रत्येक क्षेत्र और सैन्य प्रशिक्षण के प्रत्येक रूप में अद्भुत एवं अनूठे हैं। एक पक्का मुसलमान होने के बावजूद भी उन्हें भारत की सभी विचारधाराएँ प्रिय हैं। वे कहते हैं कि "यद्यपि भारतवासी हमारे जैसा धर्म नहीं रखते, परन्तु उनकी अधिकतर मान्यताएं हमारे जैसी हैं।"

आज ज़रूरत इस बात की है कि हम भारतवासी, भारत की प्रत्येक परंपरा को, चाहे वह धार्मिक हो अथवा सांस्कृतिक अथवा भाषायी, शैक्षिक हो या साहित्यिक, उसे हज़रत अमीर ख़ुसरो की तरह देखें, अपनाएं और उसके लिए अपने आप को समर्पित कर दें। हज़रत अमीर ख़ुसरो, जिनकी माँ भारतीय थीं और पिता तुर्क, एक ऐसे भारतीय हैं जो न केवल भारत की महानता के गीत गाते हैं बल्कि अपने आपको इस मिट्टी का इस प्रकार अभिन्न अंग बनाना चाहते हैं जैसे यह मिट्टी ही सब कुछ हो। देश की मिट्टी से इस लगाव और प्रेम को अल्ताफ़ हुसैन हाली ने इस तरह बयान किया है:

तेरी इक मुश्त-ए-ख़ाक के बदले
लूँ न हर्गिज़ अगर बहिश्त मिले

खुसरो फ़ाउण्डेशन देशभक्ति, मानव प्रेम तथा प्रकृति से निकटता को अपनाने और सभी प्रकार के भेदभाव और नफ़रत से ऊपर उठकर मुहब्बत को आम करना चाहती है। जिसको शैख़ इब्राहीम ज़ौक़ ने यूँ बयान किया है:

गुल्हाए-रंगा-रंग से है ज़ीनत-ए-चमन
ऐ 'ज़ौक़' इस जहाँ को है ज़ेब इख़्तेलाफ़ से

Tiranga Aanchal

Taha Nasim

बच्चों के लिए लिखना आसान नहीं है। इसके लिए बच्चों की साइकोलॉजी की गहरी समझ और आसान ज़बान का होना बेहद ज़रूरी है। तॉहा नसीम पिछले 27 सालों से बच्चों के लिए लिख रहे हैं। वह दिल्ली के एक पढ़े-लिखे परिवार से हैं। उन्होंने बच्चों में इतिहास और साइंस की समझ पैदा करने की कामयाब कोशिश की है। जिसके लिए उन्होंने साइंस और भूगोल पर तस्वीरों वाली किताबें पब्लिश की हैं। उन्होंने बच्चों के लिए पांच किताबों की एक सीरीज़ ‘‘चुनमुन’’ भी लिखी है।

ह◌ालांकि उन्होंने पहला अफ़साना 1992 में "मुस्तक़बिल" नाम से लिखा था जो दहशतगर्दी का शिकार होने वाले मासूम नागरिकों की हत्या के विरोध में था। उसके बाद उन्होंने उर्दू और हिंदी में कई कहानियाँ लिखीं। बच्चों के लिए उनकी पहली कहानी हिंदी मैगज़ीन ‘‘नंदन’’ में पब्लिश हुई थी और एक मासिक साइंटिफ़िक मैगज़ीन "प्रदन्या" में लंबे समय तक चली। उर्दू में उनकी कहानियों का पहला कलेक्शन "बर्फ़ का सिपाही" था। इसके साथ ही, छोटी कहानियों का एक कलेक्शन भी रिलीज़ हुआ था। उन्होंने बच्चों के लिए पहली जनरल नॉलेज वाली किताब "बिस्माह जनरल नॉलेज" लिखी थी।

त◌ॉहा नसीम ने साइंस पर एक फ़िक्शन, "दुनिया ख़तरे में" और 1857 की पहली जंग-ए-आज़ादी की एक गुमनाम योद्धा के बारे में लिखा है। वह बच्चों और बड़ों के लिए मज़ेदार आर्टिकल भी लिखते रहे हैं। तंज़ व मिज़ाह (हास्य और व्यंग्य) पर उनके दो कलेक्शन, "हंसते हंसते जीना सीखो" और "अवार्ड बराए फ़रोख़्त" भी पॉपुलर हुए हैं जिसको दिल्ली उर्दू एकेडमी से अवॉर्ड भी मिला है। तॉहा नसीम ने बच्चों के लिटरेचर, हिस्ट्री और उर्दू अदब पर सत्तर से ज़्यादा किताबें लिखी हैं। उनके आर्टिकल और कहानियाँ अख़बारों और मैगज़ीन में छपते रहते हैं। उन्हें दिल्ली, उत्तर प्रदेश और बंगाल उर्दू एकेडमी के साथ-साथ दिल्ली सरकार से भी अवॉर्ड्स मिल चुके हैं। उनकी किताब "तिरंगा आँचल" में देशभक्ति और क़ौमी एकता व एकजुटता पर कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ बच्चों के साथ-साथ बड़ों की भी दिलचस्पी के लिए हैं।

ISBN: 978-81-989382-3-7

ख़ुसरो फ़ाउण्डेशन خسرو فاؤنڈیشن
KHUSRO FOUNDATION
D-319, Defence Colony, New Delhi-110024 +91 9318431341

@Khusrofounda @khusrofoundation @foundationkhusro @khusro_foundation

www.khusrofoundation.org

Rs. 150.00